सम्पादक . मुनि कन्हैयालाल

स्वर्गीया चमेली देवी (धर्मपत्नी स्वर्गीय मास्टर मनफूलसिंह जैन, हिसार)
की पुण्य स्मृति मे उनके सुपुत्रो के आर्थिक सौजन्य से प्रकाशित

प्रकाशक . कमलेश चतुर्वेदी, प्रवधक आदर्श साहित्य सघ, चूरू (राज०) / मूल्य · दस रुपये / द्वितीय सस्करण १९९१ / मुद्रक : पकज प्रिटर्स दिल्ली-५३

VIVEK KI BATEN : Muni Ganesh Mal Rs 10 00

सम्पादकीय

साहित्य जीवन का अनुपम सवल होता है। साहित्य-सुधा के पान से मानव अन्त करण को तृप्त वना लेता है। साहित्य हृदय का वोल होता है— अन्तर को छूने वाला होता है। शत-शत शिक्षाए, लाखो-लाखो उपदेश जो काम नही कर सकते वह काम साहित्य कर सकता है। साहित्य अपने आप वनता है, वनाया नही जाता। साहित्य-सृजन प्रकृति की सहज देन है। साहित्यकार कोई पैदा नही किये जाते। वे अपने आप पैदा होते हैं। राजस्थानी, हिन्दी, सस्कृत आदि ये सब साहित्य की धाराए हैं। प्रस्तुत पुस्तक 'विवेक की वातें' का यह दूसरा सस्करण हिन्दी भाषा मे पद्यात्मक सुन्दर सरस कृति है।

वहुमुखी प्रतिभा के धनी मुनिश्री गणेशमलजी शास्त्रज्ञ, साधनारत, निस्पृही, शान्त स्वभावी, सरलचेता सन्त हैं। आपका जन्म सवत् १९६६ फाल्गुन कृष्णा ११ को गगाशहर (वीकानेर) मे चोपडा परिवार मे हुआ। आपके पिताश्री डूगरमलजी चोपडा धर्मानुरागी, शासन-भक्त श्रावक थे। वि० स० १९८२ माघ शुक्ला सप्तमी लाडनू (राजस्थान) मे पूज्य कालूगणी ने आपको दीक्षित किया। गुरुदेव के सान्निध्य मे ही आपने सस्कृत व प्राकृत भापा का अध्ययन किया और अव आप स्वय पूज्य गुरुदेव के श्रीचरणो मे भाव, भाषा, उपमा, अलकार व अनुप्रास से सुसज्जित इस अनुपम काव्यकृति को उपहृत कर रहे है, यह एक स्तवनीय प्रयास एव सुरम्य संगम है। उपकारी के उपकार से उपकृत होने की प्रथम मजिल कहें तो भी कोई अतिशयोक्ति नही होगी। आपने गुरुदेव से जो कुछ सुना, जो कुछ सीखा, जो कुछ पाया उन्ही विकीर्ण मुक्ताओ का

परिचयन कर कण्ठाभरण के रूप मे तैयार कर दिया जो कि प्रत्येक मानव की शोभा वढाने मे सहायक सिद्ध होगा, ऐसी आशा है।

आपको लगभग पचीस वर्षों तक गुरुकुलवास का सौभाग्य उपलब्ध हुआ। अनेक वर्षों तक आप महामना मन्त्री मुनिश्री मगनलालजी स्वामी की परिचर्या मे रहे।

आचार्य तुलसी के शब्दो मे—

वर्षां रह्यो मगन सेवा में, गणेश गगाशहरी।
भारी लाभ कमायो मुनिवर, करी निर्जरा गहरी॥
रात्यूं रोज रोज व्यावच्चियो, गणेश गगा न्हावे।
घडा भर आटे ज्यूं गूदे, बावो तो न अघावे॥

(मगन-चरित्र)

जहा आप सेवा मे रत रहे वहा आप ज्ञानाराधना, दर्शनाराधना, चरित्राराधना मे भी रत रहे। क्रमश आप उच्च कोटि के मेधावी लेखक, कवि वने। आपकी 'मुहावरो की महक', 'सूक्ति सुवोध', 'भावना वोध', 'आत्मवोध' 'विवेक की वातें' आदि दोहो की कई प्रकाशित पुस्तकें जन-जन के मानस मे आध्यात्मिक त्रिपथगा प्रवाहित करने मे सफल वन रही हैं।

आचार्य तुलसी ने महती कृपा कराकर आपको २८ वर्ष की युवावस्था मे अग्रगण्य वनाकर धर्म प्रसारार्थ विहरण करने की आज्ञा प्रदान की। आपने अपने सयमीकाल मे हजारो मील की यात्रा की। राजस्थान, हरियाणा, पजाव, दिल्ली, उत्तर प्रदेश, हिमाचल प्रदेश, गुजरात, महाराष्ट्र आदि प्रान्तो मे आपने हजारो विद्यार्थियो, कर्मचारियो, अधिकारियो, अध्यापको, व्यापारियो, मजदूरो व कैदियो, वैंक मैनेजरो को अणुव्रत के माध्यम से उद्‌वोधन दिया। आप जहा भी पधारे वहा आपके सहज सारल्य व सौम्य स्वभाव का जन-मानस पर प्रभाव पडे विना नही रहा, यह मेरे ३५ वर्षीय सामीप्य की अनुभूति है।

प्रस्तुत कृति के छन्द और मुक्तक विभिन्न शिक्षाओ से ओत-प्रोत हैं। निम्नोक्त छन्द मे वहुत ही सुन्दर शिक्षा अकित की गई है—

मन के मल को साफ करे जो, इससे बढ़कर स्नान नहीं,
सव जीवों को अभय वनाए, इससे वढ़कर दान नहीं।

अपने को जो स्पष्ट पहचाने, इससे बढकर ज्ञान नहीं,
निर्विकार मन जो रख पाये इससे बढकर ध्यान नहीं ॥

इसी के साथ-साथ आत्म-चिन्तन के विषय मे जनता को जो उद्बोधन दिया है, वह निम्नोक्त छन्द मे सहज मे अवगत हो जाता है—

मेरा क्या है, और कौन मैं, क्या करना है श्रेयस्कर,
क्या करता हू और किया क्या, छोड रहा किस को कल पर।
क्या अब करना शेष रहा है, जो कि आत्म हितकारी,
प्रात काल करो यो चिन्तन, यदि बनना है अविकारी ॥

इस प्रकार मुनिश्री के छन्दो व मुक्तको मे जीवन के विविध पहलुओ, धर्म के मूल तत्त्वो, दार्शनिक विषयो का समावेश सहज और सरलता के साथ हुआ है कि हर बात आसानी से हृदय मे उतर जाती है। मुनिश्री के प्रत्येक छन्द मे आध्यात्मिकता की पुट है। ये छन्द और मुक्तक विद्वद्योग्य तो हैं ही, जन साधारण के लिए भी बहुत प्रेरक व आत्मविकास मे भी सहयोगी सिद्ध होगे, ऐसा आत्मविश्वास है।

गगाशहर

—मुनि कन्हैयालाल

'विवेक की बातें' की एक बात

काव्य का प्रवाह मन्दाकिनी की पावन धारा है। जिस प्रकार गगा के पवित्र जल मे पाप-प्रक्षालन की शक्ति होती है उसी प्रकार सत्काव्य के आस्वादन से मनोविकारो का परिष्कार और आत्मा का उद्बोधन होता है। कविता के नाम पर आज जो छिछली रचनाए आए दिन देखने को मिलती रहती हैं उनका प्रयोजन मनोरजन मात्र है। फलस्वरूप जन-मन को स्पन्दित कर कल्याण करने की भावना का नितान्त अभाव रहता है। आचार्य क्षेमेन्द्र ने औचित्य को काव्य की आत्मा माना है। औचित्य के अभाव मे रस भी नीरस हो जाता है। इसी हेतु गोस्वामी तुलसीदास ने काव्य को लोकमगल के तत्त्व से सन्निहित कहा है।

भाषा भनिति भूति भलि सोई।
सुरसरि सम सब कहँ हित होई।।

उनके अनुसार भाषा, काव्य और सम्पत्ति वही सराहनीय है जो गगा के समान सबका मगल करने वाली हो। इस प्रकार सत्काव्य का उद्देश्य सत्य-शिव-सुन्दर की अभिव्यक्ति है। वह हमारी हृत्तन्त्री को झकृत करता है। विवेक को जागृत और प्रेरित करने की क्षमता रखता है। दैवी भावना को जगाता है। धमनियो मे स्वस्थ रक्त का सचार करता है। मस्तिष्क को पौष्टिक तत्त्व प्रदान करता है। 'अह' को मर्यादित और अनुशासित करता तथा 'इद' के साथ सबध स्थापित करता है। सच्चा काव्य सत्य को प्रकाशित करता है। शिवत्व का सपादन और चिरन्तन सौन्दर्य का उद्घाटन करता है। परम आनन्द का आस्वादन कराना उसका हेतु है। लोकमगल

की भावना का उद्‌बोधन कराने मे सक्षम है। उससे हमारे हृदय मे सात्विक भावनाए लहरा उठती हैं। ब्रह्मानन्द की अनुभूति होती है। ऐसे प्र णास्पद काव्य को रचने की प्रतिभा विरले मनीषी में होती है, क्योकि काव्य के आविर्भाव के लिए हृदय की मुक्तावस्था की अपेक्षा है। उसी रसदशा मे हृदय की मुक्ति-साधना के लिए वाणी शब्दविधान करती है, जिसे हम काव्य कहते हैं। ज्ञानयोग और कर्मयोग की भाति ही कवि की साधना भी भावयोग कहलाती है। पहुचे हुए कवि ही ऐसे ब्रह्मास्वाद सहोदर रस का आस्वादन करा सकते हैं। मुझे यह कहने मे गौरव का अनुभव होता है कि मुनि गणेशमलजी ऐसे ही सिद्ध कवि है। आप सन्त हैं, सुधारक है, मनस्वी है, साधक हैं। आपके साधनामय जीवन, काव्य-प्रतिभा, आध्यात्मिक सन्देश, बौद्धिक परिवेश एव धार्मिक विचारधारा की गहराई मे जाकर ही आपके शब्दों के वास्तविक अर्थ का सही मूल्यांकन कर सकते हैं। आपके महनीय जीवन-दर्शन का हृदयगम करके ही कोई जिज्ञासु अथवा भावुक आपके भावपुष्पो के भीने मकरन्द का पान कर भावविभोर हो सकता है।

मुझे मुनिश्री गणेशमलजी के पावन सान्निध्य का कई बार सुअवसर मिला है। आपका महान् व्यक्तित्व अध्यात्म का सारस्वत स्रोत है, जिससे शान्त रस का निर्मल सोता सतत प्रवहमान है। आपकी साधना मे स्नात कई मूल्यवान रचनाए प्रकाशित हो चुकी है। हिन्दी सन्तकाव्य की ये अक्षय निधिया हैं। दोहा सोरठा आदि कई प्राचीन छन्दो को पुनरुज्जीवित कर तथा चित्रकाव्य की भी रचना कर आपने काव्य मे अपनी कारयित्री एव भावयित्री प्रतिभा का भी परिचय दिया है। प्रस्तुत ग्रथ 'विवेक की बातें' मे आपके दिव्य जीवन-दर्शन के परिचायक प्रतिनिधि मुक्तक सकलित हैं। इनमे आपके मुक्त हृदय के उन्मुक्त गान गुजायमान हैं। आध्यात्मिक मंदिर के एकनिष्ठ पुजारी के ये उच्छ्वास है। अपनी अनुपम साधना की अन्यतम अनुभूतियो को भी आपने काव्य के रूप मे छन्दोबद्ध कर सहृदय भक्तो को लाभान्वित किया है। इस प्रकार ये गीत छन्दोबद्ध शब्दविन्यास मात्र नही हैं। आध्यात्मिक आनन्द और आत्मबोध की तन्मयता इनके शब्द-शब्द मे तरलायित हो रही है। प्राचीन वैदिक ऋषियो की भाति ही आपने शिव-सकल्पो को जगाकर रोगी मन का उपचार कर

पुन आत्मसाक्षात्कार करने का मार्ग प्रदर्शित किया है। आपकी भावनाओ को प्राचीन शब्दावली द्वारा इस प्रकार समझ सकते हैं—

यशस्वी तेजस्वी ब्रह्मवर्चस्वी अन्नादी भूयासम्

अर्थात् अपने शरीर मे अनामय होकर विराजो। कवि के शब्दो मे सुनिए .

देव धर्मगुरु मे दृढ निष्ठा निश्छल अन्तरदृष्टि उदार,
भवसागर तट निकट अगर हो, प्रकट स्वत हो ये संस्कार।
महापुरुष का सदाचार ही गुण विशिष्ट कहलाता है,
जो औरो के हृदयपटल पर विजय प्राप्त कर पाता है।
कूप खोदनेवाला मानव, जाता है नीचे की ओर,
महल बनानेवाला क्रमशः चढता है ऊपर की ओर।
हुए बहुत से तीन लोक पर, विजय प्राप्त करने वाले,
जीत न पाये मन की अगणित बल का दम भरने वाले।
मनोविजय है विजय कठिनतम, देखो निज अनुभव द्वारा,
जिसने मन को जीत लिया है, उसने जीता जग सारा।

—भुवनेश्वरप्रसाद गुरुमेता
प्रोफेसर, हरियाणा कृषि विश्वविद्यालय
हिसार

क्रम

विवेक की बातें

मगलाचरण

जिनकी वाणी से जीवो को, निज स्वरूप का ज्ञान हुआ,
जिनके चरणो मे भक्तो को, आत्मशान्ति का भान हुआ।
जिनके चेतन दर्पण-तल में, अकित जग-सस्थान हुआ।
विभु जिनवर की पावन स्मृति से, विघ्नों का अवसान हुआ।

चेतन

मैं हू द्रष्टा, दृश्य नही हू, मैं चेतन जड-जन्य नही,
मैं न सुगन्धित, दुर्गन्धित हू, मैं उत्कृष्ट जघन्य नही।
छेद्य, भेद्य, गुरु, लघु न वृत्त मैं, मैं न मूर्त्त निश्चेतन हू,
शुद्ध, बुद्ध, ध्रुव, अजर, अमर, अज, मैं अविनाशी चेतन हू।

आत्मज्ञान

मैं हू आत्मा, गुण ज्ञानादिक, इनसे मैं हू भिन्न नही,
देह आदि पर-वस्तु अचेतन, मैं चेतन हू खिन्न नही।
तन में घटने-बढने से मैं, कभी नही घटता-बढता,
जो माने मैं घटता-बढता, यह तो है मति की जडता॥

आत्म-चिंतन

मेरा क्या है, और कौन मैं, क्या करना है श्रेयस्कर,
क्या करता हू और किया क्या, छोड रहा किसको कल पर।
क्या अब करना शेष रहा है, जो कि आत्म-हितकारी,
प्रात काल करो यो चिन्तन, यदि बनना है अविकारी ॥

आत्म-ध्यान

अपनी आत्मा ज्ञानवान है, चरितवान् है दर्शनवान,
शक्तिमान् गुणवान् अमर है, सुख की खान और भगवान।
उपादेय है, परम ध्येय है, सेवनीय है, स्फटिक समान,
प्रतिपल निर्मल निज-स्वरूप का, स्थिरतापूर्वक ध्याऊ ध्यान ॥

उत्तम-आत्मा

है परमात्मा अपनी आत्मा, निज का पर का भी ज्ञाता,
द्रष्टा अक्षय सुख का स्रष्टा, अमित शक्ति का है धाता।
इस पृथ्वी-तल के प्रागण मे, वस्तु न कोई है ऐसी,
इसीलिए है आत्मा उत्तम, सचमुच नन्दनवन जैसी ॥

चचल मन

केश हुए हैं श्वेत समूचे, दशन[1] नही है आनन में,
सुन सकता है नही श्रवण से, रही न ताकत कुछ तन मे।
देख न सकता है आखो से, रक्षक कोई मित्र नही,
फिर भी चचल मन विषयो में रत रहता है चित्र यही ॥

---

१ दात

अन्तर्द्रष्टा बन

दोष दूसरो के क्यो देखे, सधता उससे अर्थ नही,
क्यों करता है पर की चिन्ता, बोझा है यह व्यर्थ सही।
कर अपनी नित आत्म-साधना, क्यो रहता है खिन्नमना,
अन्तर्द्रष्टा बनकर अपनी, आत्मा शीघ्र विशुद्ध बना॥

इससे बढकर नहीं

मन के मल को साफ करे जो, इससे बढकर स्नान नही,
सब जीवो को अभय बनाये, इससे बढकर दान नही।
अपने को जो झट पहचाने, इससे बढकर ज्ञान नही,
निर्विकार मन जो रख पाये, इससे बढ़कर ध्यान नही॥

घृणा क्यो

दुराचार मे दूषित नर से, घृणा न करते पुरुष महान्,
सद्वचनो के साबुन से धो, उसे बनाते स्फटिक समान।
मलिन वस्त्र को घृणित समझकर, क्या कोई तज देता है,
निर्मल जल से धोकर उसको, अधिक स्वच्छ कर लेता है॥

मै क्या हूं ?

विष-सम सयम, व्रत यम के सम, आत्म-ध्यान जसे कारा,
शिक्षा सन्तो की पावक सम, तप लगता असि की धारा।
कर्म-दोष से सन्तो का भी, सग कभी न मुझे भाता,
दूर भव्य या मैं अभव्य हू, हे भगवन्! तू ही ज्ञाता॥

तट की निकटता

आत्म-रमणता, विषय-विरतता, अनुपम समता, तत्वाभ्यास,
शम, दम, संयम में उद्यम नित, आगम वाणी में विश्वास।
देव, धर्म, गुरु में दृढ निष्ठा, निश्छल अन्तर-दृष्टि उदार,
भवसागर-तट निकट अगर हो, प्रकट स्वत होये सस्कार॥

मनो-विजय

हुए बहुत से तीन लोक पर, विजय प्राप्त करने वाले,
जीत न पाये मन को, अगणित-बल का दम भरने वाले।
मनो-विजय है विजय कठिनतम, देखो निज अनुभव द्वारा,
जिसने मन को जीत लिया है, उसने जीता जग सारा॥

दो पथ

समता के सम नही सुधारस, द्वेषतुल्य है नाग नही,
क्षमातुल्य है नही कल्पतरु, क्रोधतुल्य है आग नही।
नि स्पृहता सम मित्र नही है, शत्रु नहीं है लोभ समान,
सुख-दुख के दो पथ दिखलाये, चुन लो हितकर पथ मतिमान॥

सत्य का वृक्ष

कर लेता जो शान्त क्रोध को, विजय लोभ पर पा लेता,
भय-विस्मय से मुक्त हुआ जो, निज को अभय बना लेता।
मत का आग्रह कभी न रखता, न्याय-नीति से चलता है,
वाणी के प्रागण मे उसके, वृक्ष सत्य का फलता है॥

शिक्षा का भाजन

रख पाता जो मन पर अंकुश, दमन इंद्रियों का करता,
और न बनता रसना-लोलुप, विषयासेवन से डरता।
जो प्रमाद में समय न खोता, करता गुरु-जन का सम्मान,
सत् शिक्षा का पात्र वही है, उसको शिक्षा दो अम्लान॥

वही विद्वान

अपने जो है अवगुण उनका सबसे पहले ज्ञान करे,
फिर उनके हैं क्या-क्या कारण, उन पर सम्यक् ध्यान धरे।
हेय क्रिया को त्वरित त्याग दे, उपादेय स्वीकार करे,
वही विवेकी नीर-क्षीर का, सहज सत्य साकार करे॥

विवेक की बात

नहीं भूल का होना विस्मय, किन्तु समझना उसे न भूल,
यही भयंकर बड़ी भूल है, सब भूलों की है यह मूल।
करना पुनरावृत्ति भूल की, है अपने प्रति ही अपराध,
भूल सुधारे अपनी पहले, वही साध्य को लेता साध॥

पहले और आज

आत्म-ज्ञान के उपदेष्टा, औ' श्रोता पहले मिल जाते,
पर मिलते थे विरले, अपने जीवन में जो अपनाते।
हाय! आज जो श्रोता, वक्ता, विरले ही मिल पाते हैं,
कैसे हो उत्थान जगत का, भौतिकता पनपाते हैं।

सदाचार

महापुरुष का सदाचार ही, गुण विशिष्ट कहलाता है,
जो औरो के हृदय-पटल पर, विजय प्राप्त कर पाता है।
चरित विना तो नर के तन की, सुन्दरता होती है व्यर्थ,
क्या रोहिड का सुम औरो का चित्त-हरण मे हुआ समर्थ ॥

दुख का नाश

किया दु.ख का नाश उसी ने, जिस मानव के मोह नही,
मोह उसी का नाश हुआ है, जिसके तृष्णा-द्रोह नही।
तृष्णा का है भाव न उसके, जिसके मन मे लोभ नही,
निष्किचनता वहा निरन्तर, जहा लोभ का क्षोभ नही ॥

उद्योगी बनो

यदि उद्योगी बनने को कुछ, क्षमता रखते हो मतिमान,
तो फिर साध्य-सिद्धि मे अपनी, अनुपम ऊर्जा करो प्रदान।
बाधाओं से विघ्नो से फिर, मत होना भयभीत कभी,
चूमेगी फिर क्यो न सफलता, चरण तुम्हारे शीघ्र अभी ॥

विचित्रता

सत्य वचन मे, श्रुत था मति मे, मैत्री का था मन मे वास,
शौर्य भुजाओ मे था जिनके, जीवन मे था सहज विकास।
वे गुण-सागर मानव देखो, निरभिमानता से रहते,
किन्तु आज तो निर्गुण नर भी, अहकार मे है बहते ॥

निन्दा का भोजन

घोर तपस्या करता रहता, सहकर संकट विविध प्रकार,
अपने दोषो का करना है, शीघ्र नाश यह सतत विचार।
किन्तु दूसरो की निन्दा का, भोजन करके अज्ञानी,
निज दोषों का पोषण करता, कितनी है यह नादानी॥

विद्वान कौन

जैसे कानन में आजीवन, मृग आदिक पशु करते वास,
मृगपति से भयभीत सदा वे, दूर-दूर चरते हैं घास।
वैसे ही जग मे जो मानव, धर्म तत्त्व का करके ज्ञान,
रहते हैं जो दूर पाप से, कहलाते हैं वे विद्वान॥

स्वयं विचार

हो जाती है घृणा चित्त में, अति परिचित नर-वर के साथ,
प्रीति नये से हो जाती है, ऐसा है जग में जनवाद।
क्यो तू उसको मिथ्या करता, रे मानव ! कुछ स्वय विचार,
चिर-परिचित निज दोषो मे रत, करता तू न गुणो से प्यार॥

भाग्य-विधाता

पूर्व-जन्म का किया हुआ ही, कर्म भाग्य कहलाता है,
अत. पुरुष का अपना पौरुष, सचमुच भाग्य-विधाता है।
महा-पुरुष निज पौरुष से ही, कार्य-सिद्धि कर पाते हैं,
भाग्य-भरोसे रहते वे तो, नर पीछे पछताते हैं॥

भव-भावना

घोर दुःख है जन्म-जरा का, और मृत्यु का भय भारी,
रोग, शोक, उपसर्ग, उपद्रव, चिन्ता और महामारी।
कष्ट अनेकों आते रहते, जिनका आता अन्त नहीं,
बड़ा भयंकर है भव-सागर, घोर दुःख की खान यही।

एकत्व-भावना

यहां अकेला आया प्राणी, और अकेला जाता है,
निज कृत कर्मों के कटु फल भी, स्वयं वही पाता है।
तेरा क्या है, तू किसका है, कौन दु.ख मे है साथी,
निर्मोही बन क्यों न अकेला, बनता नमि-नृप की भांति।।

अन्यत्व-भावना

मात-पिता सुत बान्धव नारी, धन के ये भण्डार भरे,
इसमें तेरा कौन? बता रे, जिनमें तू ममकार करे।
जिससे रखता भेद नहीं तू, वह तन भी क्या है तेरा,
पड़कर ममता के चक्कर मे, मत कर तू मेरा, मेरा।।

अशौच-भावना

अशुचि-जन्य है तन यह नश्वर, और अशुचि का है भण्डार,
मन-हर चीजें भी हो जाती, इससे निन्दनीय अनपार।
घृणित अशुचि का घर है यह तो, कैसे होगा पावन मूढ,
है मदिरा का घर तन तेरा, समझ जरा यह तत्व निगूढ।।

आश्रव-भावना

जीव-रूप है नौका इसमे, आश्रव-रूप छिद्र भारी,
कर्म-रूप जल आता रहता, डूब रहे हैं ससारी।
आत्म-हितैषी सबसे पहले, कर्म द्वार को बन्द करे,
क्योंकि दुःख की जड है आश्रव, ज्ञानी इससे सदा डरे।।

संवर-भावना

सम्यग्-दर्शन से होता है, मिथ्या-दर्शन का प्रतिकार,
व्रत से अव्रत, अप्रमाद से झट प्रमाद का रुकता द्वार।
चौथे सवर से कषाय का, पंचम से हो योग-निरुद्ध,
भव्य भावना सवर इससे, आश्रव होता है अवरुद्ध।।

निर्जरा-भावना

जैसे सोना और मृत्तिका, लोलीभूत परस्पर है;
अग्नि-योग से खाद रहित हो, होता सोना भास्वर है।
वैसे आत्मा जो अनादि से, कर्म-योग से मलिन महान्,
हो जाता है तप के द्वारा, क्षण मे निर्मल स्फटिक समान।।

धर्म-भावना

धर्म द्वीप है, धर्म त्राण है, धर्म शरण है सुखकारी,
धर्म कल्पतरु, धर्म देव-मणि, धर्म सकल भव-भयहारी।
धर्म मित्र है, धर्म बन्धु है, धर्म परम मगलकारी,
एक धर्म के बिना जीव यह, पाता है सकट भारी।।

लोक-भावना

कही खड़े हैं उन्नत पर्वत, कही भयानक हैं गड्ढे,
कही समन्वय के सम्मेलन, कही विरोधो के अड्डे।
कही महल मे राग-रग है, कही रुदन-आक्रन्दन है,
देख लोक को रचना कर लो, आत्म-रमण वन नन्दन है॥

वोधि-भावना

चक्रीश्वर के भोजन-सम नर-भव का दुर्लभ योग मिला,
आर्य क्षेत्र, कुल उत्तम पाया, शास्त्र-श्रवण का भाग्य खिला।
दीर्घ आयु है, पाच इन्द्रिया, और निरोगी है काया,
पर इनकी है तभी सफलता, वोधि रत्न यदि है पाया॥

मैत्री-भावना

सव जीवो से रखो मित्रता, वैरी कोई है न यहा,
विश्व समूचा है यह परिकर, रहते उच्च विचार जहा।
रहना कितना समय यहा पर, एक दिवस तो जाना है,
वृथा वढाकर वैर-भावना, दुख की नीव लगाना है॥

प्रमोद-भावना

राग-द्वेप का क्लेश मिटाकर, वीतराग जो वन जाता,
अपने मन पर अनुशासन कर, आत्म-विजेता कहलाता।
घोर तपस्वी ज्ञानी, ध्यानी, सेवा-भावी उपकारी,
गुणवानो के भव्य गुणो का, है अनुमोदन हितकारी॥

कारुण्य-भावना

धन के, पद के लोभी मानव, हाय ! परस्पर लड़ते हैं,
पिता-पुत्र भी, पति-पत्नी भी, धन के लिए झगडते हैं।
कही इन्द्रियो के वश होकर, नर नाना दुख पाते हैं,
सन्त देखकर दशा जगत की, करुणा-रस सरसाते हैं।।

औदासीन्य-भावना

औरो को हित-शिक्षा देकर, अपना धर्म निभाता है,
अगर न माने शिक्षा कोई, उस पर क्रोध न लाता है।
तजकर पर की चिन्ता अपनी, आत्मा मे रम जाता है,
उत्तम औदासीन्य भावना, परम शान्ति नर पाता है।।

प्रमाद

मदिरा आदिक मादक चीजे, उनका आसेवन करना,
विषयो मे रत रहना मन को, कषाय मे कलुषित करना।
निद्रा को अति आदर देना, विकथा आपस में करना,
ये हैं पाचो प्रमाद रे नर ! इनसे तू डरते रहना।।

सुन्दरतम रूप

मधुर मधुरतम स्वर ही होता, कोकिल का सुन्दरतम रूप,
और पतिव्रत-धर्म एक ही, नारी का है भव्य स्वरूप।
सद्-विद्या ही कुरूप नर का, होता प्रशसनीय सुरूप,
क्षमा धर्म ही परम तपस्वी, सन्तो का सद्रूप अनूप।।

आदर्श

भोग विरत, नत, आत्म-ध्यान-रत, क्रुध, न होते कभी नही,
राग न रत्नो पर रखते जो, पत्थर पर भी रोष नही।
प्रमुदित कभी न स्तुति से होते, खिन्न न निन्दा से होते,
समता मे नित रमते रहते, वे मुनि आत्मा को धोते॥

उच्च-जीवन

जिन सन्तो ने दया-भाव मे, क्रूर-वृत्ति का नाश किया,
पर-पदार्थ पर ममता तजकर, आत्मा पर विश्वास किया।
अन्तर अरिगण को जीता है, अपने अविचल बल द्वारा,
ऐसे सन्तो के चरणो से, पावन है जग-तल सारा॥

समत्व

सर्व-कलाविद्, विद्यासागर, तेजस्वी पर-उपकारी,
दानवीर, रणवीर, यशस्वी, वक्ता, रूप-मनोहारी।
मिल सकते हैं ऐसे मानव, उनका है न अभाव यहा,
पर, हो शत्रु-मित्र मे सम-रस, उनका है सद्भाव कहा॥

शान्त-सुधारस पान

क्रोध मित्र ! अब शीघ्र यहा से, लेनी तुम्हे विदाई है,
मान बन्धु ! अब चलो, कपट की, भी न चले ठकुराई है।
सखे लोभ ! अब तुम्हे विदाई, लेनी होगी सह सम्मान,
संप्रति मैंने किया सुगुरु से, अनुपम शान्त-सुधारस पान॥

रिक्त हाथ

भोले मानव ! इस दुनिया के पीछे क्यो तू पागल है,
सासो के अतिरिक्त और क्या, तेरे कर मे सबल है।
यही रहेगा सब कुछ सचित, रक्षित परिकर और धरा,
रिक्त हाथ बस अरे! अकेला जायेगा कुछ सोच जरा ॥

लाभ और हानि

नश्वर तन से नियम साधकर, सयम से कर निज उद्धार,
रे मानव ! तू पा सकता था, अविकल आत्म-शाति का द्वार।
उस जीवन को विषयो मे रत, होकर तू ने नष्ट किया,
मार्ग मोक्ष का तजकर तूने, अपना जीवन भ्रष्ट किया ॥

क्या किया ?

बडे कष्ट से अर्जित धन को, गवा दिया है खेल जुआ,
चिन्तन, मनन तुम्हारा प्रतिपल, पर-नारी के लिए हुआ।
धनपतियो का चाटुकार बन, किया वुद्धि का विफल प्रयोग,
हाय ! किया क्या तूने पाकर, इस नर-भव का सुन्दर योग ॥

कषायी बनो

अपनी जो हैं बुरी क्रियाए, उन पर क्रोधी बन जाओ,
निज चरित्र को श्रेष्ठ देखकर, स्वाभिमान को रख पाओ।
स्वीय गुणो का भी गोपन कर, मायावी नर कहलाओ,
पर-गुण को अर्जन करने हित, मानव ! लोभी बन जाओ ॥

सच्ची दया

पाप-पक से लिप्त पुरुप का, जोवन कर देना उज्ज्वल,
शभ प्रयास से विफल वनाना, दुर्व्यसनो का दावानल।
मित्र-भावना के अकुर को, वृद्धिगत करते रहना,
सच्ची दया यही है, प्राणी-प्राणी मे भरते रहना॥

शान्ति का द्वार

वैरी को तलवार दिखाकर, चुप कर देना शान्ति नही,
इष्ट वस्तुए मिलने पर भी, शान्ति सुधा की प्राप्ति नही।
वाछित भोगों के सेवन से, मिल सकती है शान्ति नही,
इच्छाओ पर करो नियत्रण, तभी मिलेगी शान्ति सही॥

दस धर्म (प्रथम)

क्षमा धर्म है, क्रोध न करना, लोभ मुक्ति का है प्रतिकार,
कपट-रहित है रहना, आर्जव, मार्दव मद का है परिहार।
अल्प-उपधिता है यह लाघव, या गौरव का करना त्याग,
सत्य वोलना हित, मित, सयत, रखना नही झूठ से लाग॥

दस धर्म (द्वितीय)

पाप-वृत्ति का तजना सयम, अथवा कषाय का निग्रह,
तप इच्छाओ पर है अकुश, त्याग नही करना सग्रह।
ब्रह्मचर्य, नववाड, सहित नित, मन वश कर पालन करना,
श्रमण-धर्म दस ये अपनाओ, यदि भव-सागर से तरना॥

सिद्धि

'जिस मानव के मानस में है, विषयो से सम्यग् विरती,
और तत्त्व का ज्ञाता जिसके, त्यागी सद्गुरु शुद्ध-मति।
आत्म-शक्ति पर है दृढ श्रद्धा, रखता संशय-बुद्धि नही,
भय रखता है सदा पाप का, वह पायेगा सिद्धि सही।।

बाधक

क्रोध, मोह, आलस्य, अवज्ञा और कृपणता, क्रीड़ा, मान,
है प्रमाद व्याक्षेप कुतूहल, शोक और भय है अज्ञान।
धर्माराधन करने मे हैं, बाधक ये तेरह बातें,
इनसे रहते दूर हमेशा, अचल शान्ति-पद वे पाते।।

तराते-डुबोते

जग मे अपने सम्बन्धी ही, नर को त्वरित तराते हैं,
और डुबोने वाले वे ही, जगतल मे कहलाते हैं।
चरितवान हो अगर मनुज वे, कर देते हैं बेडा पार,
और नष्ट कर देते वे ही, अगर भ्रष्ट उनका आचार।।

ज्ञान का भार

चन्दन ढोने वाला गर्दभ, मात्र भार का भागी है,
वह चन्दन की शीतलता का, हो सकता न विभागी है।
चरित्त-रहित वह ज्ञानी केवल, भार ज्ञान का ढोता है,
किन्तु सुगति का अधिकारी वह, ज्ञानी कभी न होता है।।

निश्छल सत्य

सभा नहीं है वह तो जिसमे, वृद्ध जनो का स्थान नहीं,
वृद्ध नहीं वे कहलाते जो, करते धर्माचरण नही।
धर्म नही वह तो जिसमे, है सहज सत्य का काम नही,
कहलाता वह सत्य न जिसमें, निश्छलता का नाम नही।।

धैर्य

घोर दुख में धैर्य न छोडो, धैर्य-धर्म ही है त्राता,
मार्ग उसे मिल जाता है जो, अचल धैर्य को रख पाता।
जब तूफान जलधि मे आता, तब रक्षक कब मिलता है,
धीर-वीर फिर भी सकट को, छाती चीर निकलता है।।

सुरक्षित भंडार

शूरवीर वह पडित है वह, वन्दनीय वह है श्रद्धेय,
अमर कीर्ति का है वह भाजन, शक्र सभा में वह सगेय।
जिसने कचन गिरि-सम अविचल, दिल से सहकर कष्ट अपार,
सदा सुरक्षित जिसका अपना, सच्चरित्र धन का भडार।।

अपमानित होना भी अच्छा

सत्पुरुषो से अपमानित भी, मानव शोभा पाता है,
किन्तु दुर्जनो से सत्कृत भी, सुयश न कभी कमाता है।
घोडे के पग से हत मानव, कभी न लज्जा पाता है,
किन्तु सवारी कर गर्दभ की, अपनी शान गंवाता है।।

प्रशस्य नहीं

कामदेव-सा रूपवान है, अनुशासन चक्री जैसा,
शालिभद्र-सा ऋद्धिमान है, वली वाहुवलि के जैसा।
किन्तु नही है चरितवान तो, होता है न प्रशस्य कभी,
क्या पलाश का रम्य पुष्प भी, हो सकता है स्तुत्य कभी ॥

पछतायेगा

क्षणभगुर है जीवन, इसमे विपदाओ का पार नही,
काम-भोग हैं जहर हलाहल, इनमे कुछ भी सार नही।
पुत्र आदि हैं परिजन स्वार्थी, जिनमे सच्चा प्यार नही,
पछतायेगा तू ने अव भी, अगर किया उद्धार नही॥

सुख-शय्या

यह सारा जग सारहीन है, इसमे किसने क्या पाया,
जो अज्ञानी हुआ यहा रत, पीछे वह तो पछताया।
इसीलिए ही ज्ञानी मानव, इसमे कभी न रत होते,
शान्त-सुधारस पीकर प्रतिपन्न सुख-शय्या मे वे सोते।

निर्ममत्व

निग्रह करना है निज मन का, विग्रह से नित डरना है,
आग्रह रखना सदा सत्य का, दूर दुराग्रह करना है।
सग्रह करना श्रेष्ठ गुणो का, और अभिग्रह करना है,
मोह न करना है विग्रह[1] पर, सहज शान्ति यदि वरना है॥

---

१ शरीर

चार ध्यान

हिंसा से अनुरंजित हो वह, रौद्र-ध्यान कहलाता है,
और काम से रंजित हो वह, आर्त-ध्यान दुख-दाता है।
विशद धर्म से अनुरंजित वह, धर्म-ध्यान सुख-दाता है,
पूर्ण निरंजन शुक्ल-ध्यान वह, निज स्वरूप प्रकटाता है॥

विजय

है कषायमय चार चरण औ' राग रोष दो दशन[1] बड़े,
मोह-रूप जिसके कुम्भस्थल, बलधर जिससे कौन अड़े।
उस मिथ्यामति गज को जिसने, मार पछाड़ा रण-थल मे,
वही तपस्वी नर तेजस्वी, बना यशस्वी जगतल मे॥

कृत्रिम वीर

निन्दनीय है तेरा पौरुष, अरे मोह ! तू मतवाला,
भीषण भव-जल की धारा मे, मुझे बांधकर है डाला।
पर गुरु-शिक्षा-नौका से अब, तीर भवोदधि का पाया,
दिखला दे अब तनिक वीरता, देखूं मैं तेरी माया॥

उपचार

ऊपर-नीचे आगे पीछे, इधर-उधर नित चारो ओर,
हंसगामिनी एक कामिनी, दीख रही जिसको सब ठौर।
पर, अब उसकी ओर न देखे, जो कि खड़ी है सज शृंगार,
बस-बस पहुंच गये हैं, सद्‌गुरु, किया उन्होंने नव-उपचार॥

---

१ दांत

मृत्यु को देखो

सुभग-यौवना सुन्दर नारी, सुत मेरे हैं अनुयायी,
भव्य भवन की श्रेणी मनहर, मित्र-बन्धु हैं सुखदायी।
मणि-मुक्ता से भरे खजाने, सज्जित गज, रथ, यान, विमान,
इनमे होकर मुग्ध मृत्यु को, भूल रहा है नर अनजान॥

जगत-जजाल

पुष्ट-वक्ष वह युवक बना है, कल तक था जो शिशु नादान,
जर्जर कुठित वृद्ध बना फिर, कभी तरुण था जो बलवान।
अरे! ले गया कहा वृद्ध को, बतलाओ अब काल कराल,
देखो कैसा है यह कौतुक, सचमुच यह जग है जजाल॥

अनन्त तृष्णाएं

सोने-चादी के पर्वत भी, मानव को यदि मिल जाये,
तृष्णा के इस महागर्त्त को, फिर भी वह क्या भर पाये?
हैं अनन्त नभ-सम तृष्णाये, उनका अन्त कहा आये,
हो सतोषी मानव तब ही, तृष्णा-आग बुझा पाये॥

पात्र-भेद

एक जलाशय मे पीते हैं, धेनु और पन्नग पानी,
दूध धेनु मे, विष पन्नग से, बन जाता कहते ज्ञानी।
शास्त्र-जलाशय का जल पीते, ज्ञानी, अज्ञानी मानी,
ज्ञानी सम्यग् परिणत करते, और असम्यग् अज्ञानी॥

ज्ञान-यान

विशद चरित-मय काष्ठ-व्यूह से, विरचित सम्यग् ज्ञान जहाज,
गुरु-आज्ञा-गुण से गुम्फित है, शील-ध्वजा है जिसका ताज।
उस जहाज से मोह ग्राहमय, भव-सागर यदि है तरना,
तो विकार-मय चट्टानो को, टक्कर से प्रतिपल डरना ॥

संयम-तरू

जिसका सम्यग्-ज्ञान मूल है, शाखायें सम्यग्-दर्शन,
प्रति-शाखाये शम दम, समता, सत्य शौच है श्रेष्ठ सुमन।
उस सयम-तरु को जो सीचे, श्रद्धामय-जल से अविराम,
वह पायेगा अविचल अविकल, अक्षय अव्यय फल अभिराम ॥

चार-रपुरुष

दुखी दुख मे, सुखी सौख्य मे, वे होते नर लोह समान,
दुख मे भी जो सुख से रहते, वे मानव कचन उपमान।
सुख-दुख मे सम रहते हैं वे, रत्न तुल्य कहलाते है,
सुख-दुख से न प्रभावित होते, वे योगी वन जाते है ॥

धर्म-रक्षक

धर्म-भाव से भावित जव तक, मानव का मानस रहता,
तव तक अरि को भी वह अपना, वन्धु समझता है रहता।
धर्म-हीन नर पुत्र पिता भी, आपस मे लडते रहते,
सदा धर्म है रक्षक जग का, ज्ञानी सन्त यही कहते ॥

धर्म सबके लिए

सुखी-दुखी हो चाहे जैसा, मानव इस जगती तल मे,
उसे चाहिए सदा धर्म मे तत्पर रहना प्रतिपल मे।
सुखी मनुज के लिए धर्म है, परम शान्ति देने वाला,
दु:खी व्यक्ति के लिए धर्म है, दुख-दावा हरने वाला॥

सुख का कारण

सुख का कारण विना धर्म के, नही दूसरा हो सकता,
क्योकि कार्य से उसका कारण, नही विरोधी हो सकता।
सुख का वाधक धर्म न होता, वह तो सुख देने वाला,
फिर क्यो होना विमुख धर्म से, यदि पीना सुख का प्याला॥

धर्म करना सहज है

धर्म कार्य का अनुमोदन कर, लाभ धर्म का ले सकता,
और प्रेरणा देकर पर को, लाभ धर्म का पा सकता।
वाह्य साधनो की न अपेक्षा, धर्म अकेला कर पाता,
क्यों वचित फिर रहता इससे, जो कि सहज मे हो जाता॥

धर्म-फल ऐहिक सुख नहीं

जो सन्तो की सेवा करके, और घोर तप-जप करके,
इच्छा रखता ऐहिक सुख की, परमेश्वर की स्तुति करके।
धर्म-वृक्ष के फूलो को वह, तोड रहा है मूढ महान्,
फिर उस तरुवर के मीठे फल, कैसे पायेगा अनजान॥

धर्म-फल

सीखो ऐसा ज्ञान निरन्तर, ध्याओ ऐसा निर्मल ध्यान,
करो निरन्तर तप भी ऐसा, जप भी ऐसा करो महान्।
अन्तर मन हो पावन जिससे, कर्म-शत्रु का बीज विनाश,
क्योकि धर्म का फल है उपसम, ज्ञानी जन का दृढ विश्वास ॥

विस्मय

तप सयम के लिए राज्य भी, जो सहर्ष तज देता है,
क्या है विस्मय ! क्योंकि चरित-फल, अविचल सुख पा लेता है।
किन्तु गरल सम वान्त विषय हित, तजता सयम सुधा समान,
है यह विस्मय, इससे वढकर होगा कौन विमूढ महान ॥

दो कौतुक

कौतुकमय इस जग में कौतुक, कितने होते पता नही,
किन्तु वड़े दो कौतुक हैं वे, करते विस्मित किसे नही।
सरस सुधारस-धारा पीकर, करता है जो वमन विमूढ,
और छोड़ता चिन्तामणि-सम, प्राप्त सहज सयम मतिमूढ ॥

अश्रु क्यो वहाते ?

सुख-दाता को अगर मानते, अपना परम मित्र प्यारा,
और कष्ट जो देता उसको, अपना वैरी हत्यारा।
तव तो मरने-वाले प्रिय-जन, दुःख देकर जो जाते हैं,
वे भी क्या वन गये न वैरी, क्यो फिर अश्रु वहाते हैं ॥

विषय-रत आत्मा

विषयो मे रत मानव अपना, जितना अप्रिय कर सकता,
कठ छेदकर वैरी भी क्या, उतना अप्रिय कर सकता।
इसीलिए ही योगी अपने भावो में रमते रहते,
विषय-वासना की धारा मे, वे तो कभी नही बहते ॥

महान अन्धा

अन्ध जनों मे सचमुच अन्धा, इस जग में वह कहलाता,
विषय विकारो से जो मानव, मन को नही रोक पाता।
अन्धा केवल आंखो से ही, जग को देख नही सकता,
किन्तु सर्वथा है वह अन्धा, जो विपयो के हित तकता ॥

आशा का गड्ढा

है आशा का गर्त भयानक, इतना गहरा नर-मन मे,
अणु प्रमाण है विश्व समूचा, जिस गड्ढे के प्रागण मे।
भर पायेगा कैसे गड्ढा, रे मानव ! कुछ सोच जरा,
इच्छाए अपनी रोके तो, वस यह है फिर पूर्ण भरा ॥

बड़ी मूर्खता

भूख तृषा के कष्ट अनेको, सहने की है शक्ति नही,
अत नही कर सके तपस्या, कहते हो यो सत्य सही।
अन्तर अरि जो चित्त-साध्य है, कष्ट-साध्य है जो कि नही,
इनको भी जो नही जीतते, बडी मूर्खता क्या न यही ॥

मोह-आग

पावक तब तक जलता रहता, जब तक ईंधन पाता है,
और न मिलता है ईंधन तो, शीघ्र शान्त हो जाता है।
किन्तु मोह की आग निरन्तर, जलती रहती उभय प्रकार,
अहो ! बडी है लपट भयानक, इसका है दुष्कर उपचार।

नीचे-ऊपर

अपने ही कर्मों से मानव, नीचे स्वयं चला जाता,
और स्वयं के कर्मों से ही, मानव ऊपर चढ जाता।
कूप खोदने वाला मानव, जाता है नीचे की ओर,
महल बनाने वाला क्रमशः चढता है ऊपर की ओर॥

अणुव्रत

गिरि-सम उन्नत हाथी को भी, अणु अकुश वश कर लेता,
सघन सघनतम व्यापक तम को, लघुतम दीप मिटा देता।
वडे भयंकर रोगों का भी, अणु औषधि कर देती नाश,
घोर अनैतिकता का अणुव्रत, क्यों न करे फिर शीघ्र विनाश॥

जुआ

वहुत बुरा है जुआ खेलना, सदा जुआरी रोता है,
विक जाते हैं घर के गहने, इज्जत अपनी खोता है।
चोरी करके फिर धन लाता, जब वह पकड़ा जाता है,
कारागृह मे जूते खाता, सारा जन्म गंवाता है॥

मांस

मांसाहारी मानव निर्दय, बनकर हिंसा करता है,
क्षणिक तृप्ति के लिए हाय ! वह नही पाप से डरता है।
मांस नही है भक्ष्य मनुज का, यह तो राक्षस भोजन है,
स्वादेन्द्रिय को वश करने से, रहता स्वस्थ मनुज मन है।।

मदिरा

मदिरा पीने से मानव को, बुद्धि भ्रष्ट हो जाती है,
शक्ति क्षीण हो जाती तन की, शुद्धि न रहने पाती है।
सिर पर कर्जा चढ जाता है, मरकर दुर्गति पाता है,
पीढी कैसे चले ? शीघ्र ही वह अर्थी पर चढ जाता है।।

वेश्या

निज कुल दूषित हो जाता है, सिर पर जूते खाता है,
दुराचार में अपनी सारी, पूजी हाय ! गवाता है।
होती है तन की बर्बादी, रोग-ग्रस्त हो जाता है,
परमाधामी के हाथो मे, वेश्या-गामी जाता है।।

शिकार

दुख देते हैं नही किसी को, सूखे तृण ही खाते है,
पशुओं में मृग भोले पशु हैं, उन पर तीर चलाते हैं।
अपने को फिर वीर समझते, मन में प्रमुदित होते हैं,
वे पाते हैं दुख नरक मे, अपना जीवन खोते हैं।।

चोरी

धन का लोभी मानव चोरी, करके पर-धन लाता है,
धन के भागी सब बन जाते, पर कटु फल वह पाता है।
रहता है भयभीत निरन्तर, इज्जत अपनी खोता है,
चिन्तामणि-सम नर-भव खोकर, भव मे खाता गोता है॥

परदारा

पर-नारी है जिसको प्यारी, वह क्या मानव कहलाता,
अपने तन को, धन को खोकर, जीवित ही वह मर जाता।
करो इन्द्रिया वश मे अपनी, यदि मानवता प्यारी है,
धन्यवाद का पात्र वही है, जिसके 'मा' पर-नारी है॥

व्यसन

घोर दुःख वह पाता है जो, व्यसन एक भी अपनाता,
तो फिर कहना क्या सातो के, वश में जो नर हो जाता।
अपने मन को वश में करके, सदाचार को अपनाओ,
सही शान्ति का मार्ग यही है, इसके राही बन जाओ॥

मृत्यु न होती तो

कथा काम की किसे न भाती, किस को भाता प्यार नही,
लक्ष्मी किसको नही सुहाती, क्यो रुचता अधिकार नही।
खाना, पीना और खेलना, किसको लगता भला नही,
अगर न होती क्रूर मृत्यु तो सदा खेलती कला यही॥

तप

समता की ही सतत साधना, ममता के बन्धन तोडे,
ब्रह्मचर्य में वास निरन्तर, अन्तर अरि से मन मोडे।
तन्मयता हो आत्म-ध्यान मे, होता है तप यही सही,
केवल तन को कृश करना हो, कहलाता तप कभी नही॥

विवेक-जागरण

पुण्य-पाप का स्व-हित अहित का, जव तक होता है न विवेक,
तव तक पशु मे और पुरुप मे, भेद न होता है अतिरेक।
हो विवेक की जागृति कवि के, कविता का उद्देश्य महान्,
आत्मार्थी पर वने विवेकी, पढकर राजहस उपमान॥

प्रशस्ति

विक्रम सम्वत् उन्नीसोत्तर, दो हजार मे वर्षाकाल,
सफल हुआ है पावस जिसमें, विविध अणुव्रत-कार्य विशाल।
हुए रम्य अजमेर शहर मे, वे न कभी है विस्मरणीय,
'मुनि गणेश' को पावन कृति है 'विवेक की वातें' पठनीय॥

क्षमापचीसी

१

किया जिन्होने सकटदाता, संगम पर भी जरा न रोष।
सहन किए हैं उद्‌भव सकट, यही क्षमा-गुण है निर्दोष ॥
महावीर थे महावीर वे, उनकी स्मृति करके सोल्लास।
गाता हू मैं 'क्षमा पचीसा' क्षमा शान्ति का है आवास ॥

२

निज अपराधी का कर सकता, आसानी से जो प्रतिकार।
किन्तु क्षमा को धारण करके, उसको देता क्षमा उदार ॥
कहलाता है क्षमावान वह, और वही सच्चा वलवान।
वीरो का है क्षमा विभूषण, कहां यहा कायर को स्थान ॥

३

क्रोध निरन्तर करता रहता, मुझ पर मानव अज्ञानी।
मैं हू स्थित नित आत्म-धर्म मे, मेरी क्या होगी हानि ॥
कटु फल कैसे भोगेगा यह, वीज वैर के जो वोता।
पात्र दया का है यह इस पर, रोष मुझे कव क्यो होता ॥

४

गाली सुनकर नर मतिशाली, पीता ममता की प्याली।
मैं हू दोषी यह यिर्दोषी, क्यो इस पर लाऊ लाली ॥
अथवा मेरा दोष नही है, फिर भी गाली देता है।
थक जाएगा गाली-दाता, मेरा क्या यह लेता है ॥

५

रोष-भाव मे होश भूल कर, यदि मारे तो सहन करू।
मैं चेतन हू, तन निश्चेतन, ऐसा चिन्तन सदा करू ॥
मार रहा है जिसे, न मैं वह, और न मुझको मार सके।
भेद-ज्ञान का भान अगर हो, वह अपने को तार सके ॥

६

चाहे जितनी करो तपस्या, घोर परीषह सह करके।
भीषण वन में सूर्य-ताप को, सहन करो मन वश करके ॥
संत-समागम, शिव-सहनाणी, आगम-वाणी सुनी सदा।
किन्तु सफलता इनकी पाता, शान्त करे नर क्रोध यदा ॥

७

गाली ही तो देता है यह, किन्तु न मुझको पीट रहा।
तथा पीट भी रहा मुझे यह, क्या प्राणो को लूट रहा ॥
अथवा प्राणो को ही लूटे, पर न धर्म का है लुण्ठाक ?
यो चिन्तन मन मे जो करता, पाता है वह सिद्धि-तटाक ॥

८

घोर परीषह सह करके जो, तप का लाभ कमाता है।
क्रोधारुण हो क्रोधी उसको, क्षण भर मे खो पाता है॥
कष्ट अनेकों से कृषि करके, धान्य ढेर जो प्राप्त किया।
एक अग्नि-कण क्षण में उसको, कर देता है दहन क्रिया॥

९

करे अहित यदि कोई मानव, क्रोध अधिक तब आता है।
बदला लेकर ही रहता है, उसे नही सह पाता है॥
किन्तु सोच रे मानव! तेरा कितना करता क्रोध अनिष्ट।
क्यो न करे तब क्रोध क्रोध पर, अपनी आत्मा है यदि इष्ट॥

१०

क्रोध-दशा मे बन जाता है, नर का रूप बडा विकराल।
हो जाता है देह प्रकम्पित, आखे हो जाती हैं लाल॥
राक्षस की ज्यो मुख की आकृति, बडी भयानक हो जाती।
क्रोधी मानव की दानव से, सचमुच तुलना हो पाती॥

११

पर की हत्या करके क्रोधी, नर न कभी सकुचाता है।
किन्तु बुरा वह काम उसी को, पहले दुखी बनाता है॥
पर को करने भस्म फेकता, पावक का गोला मतिमूढ।
पर, जल जाता हाथ उसी का, पाता है वह दुःख विमूढ॥

१२

बात-बात मे जो नर करता, औरो पर निष्कारण रोष।
भले गुणी हो किन्तु न उसकी, सगति होती है निर्दोष॥
विविध रोग-हर मणि से भूषित, आशी-विष फणधर साक्षात्।
स्वागत होता है क्या उसका, भयप्रद है दर्शन की बात॥

१३

दानव बनकर क्रोधी मानव, क्या-क्या करता है न अनर्थ।
गंदा वातावरण बनाता, होकर के उत्तेजित व्यर्थ॥
जहर घोलता अरे जीभ मे, सबसे वैर बढाता है।
बात-बात में आत्म-घात कर, दुर्गति के दुख पाता है॥

१४

जैसा पावक से जल जाता, क्षण भर मे ईंधन का व्यूह।
वैसे होता नष्ट क्रोध से, तप से अर्जित पुण्य-समूह॥
अन्तर-द्रष्टा ज्ञानी करते, रोष-दोष का शीघ्र विनाश।
ज्ञान-उपार्जन, पाप-प्रमार्जन समार्जन आत्मा-आवास॥

१५

क्रुद्ध नृपति अरि सुरपति मृगपति, क्या करते उतना नुकसान।
जितना करता है मानव का, क्रोध महावैरी बलवान॥
नृपति आदि बस इस भव मे ही, कर सकते हैं कुछ अपकार।
किन्तु क्रोध नर को भव-भव में, भुगताता है दुख अपार॥

१६

मिले क्रोध के कारण जब जो, हो जाता है क्रुद्ध नितान्त।
वह कारण के हट जाने से, शीघ्र स्वय हो जाता शान्त॥
किन्तु मनुज जो निष्कारण ही, क्षण-क्षण मे करता है क्रोध।
है उपचार न उसका कोई, निष्फल उसको देना बोध॥

१७

धैर्य-धर्म क्या रह पाता है, क्या रह पाती सद्बुद्धि ?
आत्म-शक्ति क्या रह पाती है, क्या रह पाती मन-शुद्धि ?
क्या वर विवेक रह पाता है, क्या लज्जा रह पाती है ?
कामी जैसी क्रोधो नर की, क्या न दशा हो जाती है ?

१८

क्रोधी नर के मन में कम्पन, नयनो मे लाली आती।
भावी-हित की और अहित की, चिन्तन शक्ति न रह पाती॥
बन जाता है उत्पथ-गामी, विपदाओ का पार नही।
मद्य-दशा औ' क्रोध-दशा मे, अन्तर मिलता तार नही॥

१९

ज्ञान, ध्यान, तप, त्याग, नियम, यम, आगम का अध्ययन उदार।
दान, दया, दम, मित्र-भावना, अति उत्तम आचार-विचार॥
क्रोध-वृत्ति से इनका क्षण में, नाम नही रह पाता है।
एक आग की चिनगारी से, दारु-ढेर जल जाता है॥

२०

बुरी भावना से क्रोधी नर, अपना करता अहित महान।
शांति न क्षण भर भी पाता है, बन जाता है दनुज समान।।
दुष्ट विचारो से औरो का, कुछ न विगडने पाता है।
धन पर उछल-उछल कर क्रोवो, अष्टापद मर जाता है।।

२१

क्रोधी नर के कभी किसी से प्रेम न रहने पाता है।
क्रोध-दशा मे खाना खाता, वह भी विष वन जाता है।।
तप्त निरन्तर रहता इससे, तन कृश होने लगता है।
आर्त-ध्यान मे रत मानव का, आत्मिक वल कब जगता है।।

२२

स्व-दोषदर्शी वन जाने से, क्रोध शान्त हो जाता है।
सहनशीलता पनपाने से, आत्मशान्ति नर पाता है।।
वैर-भाव यदि भूले मानव, झगडे सब मिट जाते है।
हैं उपाय ये क्रोध विजय के, आत्मार्थी अपनाते है।।

२३

क्रोध विजय ही आत्म-विजय है, परम शांति-मंदिर का द्वार।
वैर-विरोध न रहने पाता, वढ जाता समभाव उदार।।
सफल साधना हो जाती है, वन जाता है सव जगमित्र।
परमात्मा वन जाती आत्मा, क्षमा-धर्म है परम-पवित्र।।

२४

क्षमा-धर्म के विना तपादिक, होते गज के स्नान समान।
और क्षमा सह ये सब होते, फलप्रद चिन्तामणि उपमान।।
क्षमा-धर्म के वल पर मुनि ने, प्राप्त किया है केवल-ज्ञान।
रोपारुण हो घोर तपस्वी, कहलाये चण्डाल समान।।

२५

अणुव्रत-शासन तुलसी गुरुवर, जिन शासन के नेता हैं।
उनकी वाणी अपनाकर नर, वनता आत्म-विजेता है।।
मुनि गणेश कृत 'क्षमा पचीसी' क्षमा-धर्म का करे प्रकाश।
दो हजार वर तीन वीस मे, रोहतक में वर्षा-ऋतु वास।।

विनय विंशिका

१

सिद्धि वधू-धव अभिनव वैभव, शान्ति-स्तवन कर सौ-सौ बार।
विनय-विंशिका की रचना का, ध्येय एक है विनय प्रसार॥
विनय मूल है सकल गुणो का, विनय विना जीवन निस्सार।
एक शील-गुण विना व्यर्थ है, जैसे नारी का शृंगार॥

२

जैसे जड़ के स्कन्ध उपजता, उससे शाखा का उद्भाव।
फिर प्रतिशाखा, पत्र, पुष्प, फल रस का क्रमश. प्रादुर्भाव॥
वैसे ही है धर्म वृक्ष का, मूल विशदतर विनयाचार।
जिसका फल है अविचल, अविकल, परम शान्ति का द्वार उदार॥

३

जिन-आज्ञा का सम्यग् पालन, विनयवान कर पाता है।
विनयवान ही गुणवानो के, गुण सहर्ष अपनाता है॥
सम्यग्-दर्शन, ज्ञान, चरित को, सफल साधना कर पाता।
एक विनय गुण से ही विनयी, अपना जीवन चमकाता॥

४

विनयवान की नित रहती है, जगती-तल में कीर्ति अखण्ड।
अपनी उन्नति का होता है, उसके थोडा भी न घमण्ड॥
अपने गुरुजन से पाता है, विनयवान सम्मान महान।
वह जगती-तल का आभूषण, और हृदय के हार समान॥

५

अविनय से जो ग्रहण किया है, ज्ञानी-गुरु से आगम-ज्ञान।
अभिमानी नर के तो होता, उससे उल्टा अहित महान॥
विनय-ग्राह्य ही ज्ञान निरन्तर, करता है नर का उत्थान।
निज-पति-गर्भा नारी का ही, होता है जग में सम्मान॥

६

वेत्रवती की जल-धारा मे, स्तब्ध वृक्ष का होता नाश।
और नम्र तरु जो होते है, कर पाते वे आत्म-विकास॥
जगतो-तल में अभिमानी नर, कष्ट अनेको पाता है।
और विनय से विनयवान नर, जग में सुयश कमाता है॥

७

व्यर्थ करे क्यो मान ज्ञान का, बिन्दु तुल्य है तेरा ज्ञान।
करना है जो प्राप्त तुझे वह, शेष रहा है सिन्धु-समान॥
गर्व ज्ञान का करके मानव, क्या कहलाता है, ज्ञानी?
विनयवान नर ही है ज्ञानी, अभिमानी है अज्ञानी॥

८

उपकारी गुरु का भी मानी, करता है न कभी सम्मान।
घोर तपस्वी ज्ञानी ध्यानी, मुनि का भी करता अपमान॥
स्तम्भ सदृश जो स्तब्ध घमण्डी, झुकना सीखा है न कहीं।
किसी काम मे भी अभिमानी, हो सकता है सफल नहीं॥

९

अन्तर वैरी अहं बनाता, मानव जीवन को उद्दण्ड।
रह पाती है उसकी जग मे, कभी न उज्ज्वल कीर्ति अखण्ड॥
भाता है क्या कभी किसी को, विनय बिना जग मे अविनीत।
विनयवान निज नम्र-भाव से, सबके मन को लेता जीत॥

१०

अपने से जो धन से बल से, विद्या से गुण से है हीन।
अभिमानी नर उन्हे देख कर, हो जाता है गर्व-अधीन॥
और स्वयं से अधिक गुणी जो, उनकी ओर न देता ध्यान।
सुनकर उनकी महिमा जग मे, करता है ईर्ष्या अज्ञान॥

११

विनयवान नर निज गुरुजन को, दृग्गोचर जब करता है।
नत मस्तक हो अपने मे वह, नम्र भावना भरता है।
अपने से लघु पर वत्सलता, और साम्य के भरता भाव।
उसके जीवन मे हो जाता, परम शान्ति का प्रादुर्भाव॥

१२

मानी मानव किसी मनुज को, माने अपने से न महान
रूपवान मैं ज्ञानवान मैं, मैं हूं अत्युत्तम कुलवान।
जानिमान मैं शक्तिमान मैं, मैं वैभवशाली मतिमान।
परम तपस्वी मैं वर्चस्वी, मैं ओजस्वी हू धृतिमान॥

१३

वाह्य रूप का अवलोकन कर, होता मानी हर्ष-विभोर।
मेरा तन है कितना सुन्दर, देख रहे सव मेरी ओर॥
पर न जानता कितने दिन यह, टिक पायेगा सुन्दर रूप।
गर्व रहा क्या चक्री का जब, देखा निज का रूप विरूप॥

१४

पुण्यवान मैं भाग्यवान मैं मैं हू आज वडा धनवान।
हाथ डालता हू जिसमे मैं, मिलता उसमें लाभ महान॥
करता है यो अह लाभ का, फूला नही समाता है।
पर पाई की भी न कमाई, पाप-उदय जव आता है॥

१५

विना गुणो के भी अभिमानी, निज का वतलाता गुणवान।
औरो के गुण अवलोकन-हित, अन्धा वन जाता अनजान॥
थोडा पाकर ज्ञान वताता, मानी अपने को ज्ञानी।
घोप वही घट करता जिसमे, आधा भरा हुआ पानी॥

१६

करता है जो गर्व गोत्र का, नीच-गोत्र वह नर पाता।
और न करता गर्व कभी जो, उच्च-गोत्र तब मिल जाता॥
ऐसा चिंतन करने वाला, रहता है समता में लीन।
वह अपने को नही समझता, सबसे ऊंचा अथवा हीन॥

१७

कभी हुआ है पशु तव परवश, ढोना पडा निरन्तर भार।
जन्म लिया है कभी नरक मे, यमदूतो की खाई मार॥
पुण्योदय से कभी हुआ नृप, मिला सकल सपद् का मेल।
क्यो करता है गर्व जाति का, पुण्य-पाप का है यह खेल॥

१८

मानी मानव को मिलता हो, अगर मान से कोई लाभ।
और विनय से होता हो यदि, विनयवान को कभी अलाभ॥
अभिमानी की स्तुति होती हो, और नम्र का निन्दा-गान।
तव तो नर के लिए निरन्तर, श्रेयस्कर करना अभिमान।

१९

थोड़ी-सी कर उन्नति उद्धत, अभिमानी नर बन जाता
मैंने की है कितनी उन्नति, यो निज मुख से ही गाता
पूर्ण समझता अपने को वह, फिर न कभी आगे बढता
ज्ञान न्यूनता का उन्नति की ओर सदा प्रेरित करता

२०

विनय-मूल-जिन-धर्म भूलकर, अविनय कभी न अपनाना।
विनय-विंशिका में सुन्दरतम, विनय-धर्म का है गाना॥
दो हजार वर तीन बीस मे, रोहतक में वर्षाऋतु वास।
'मुनि गणेश' गुरु की करुणा से, धर्म-ध्यान का हुआ प्रकाश॥

अन्य-भावना

१

मेरे वे हैं देव जिन्होने, जीत लिये रागादि विकार।
वीर, बुद्ध, हरि, हर, ब्रह्मा हो, वंदनीय वे शत-शत बार।।
सत्य तथ्य है तत्त्व वही जो, सर्वज्ञो ने बतलाया।
भवसागर से तर जाऊगा, जो जीवन मे अपनाया।।

२

सदाचार-धन के हैं दाता, गुरुवर मेरे जीवन प्राण।
और नही है रक्षक कोई, वे ही सबके सच्चे त्राण।।
उनके दर्शित-पथ पर चलकर, साध्य-सिद्धि कर पाऊगा।
रखकर हार्दिक श्रद्धा उन पर, जीवन सफल बनाऊंगा।।

३

आत्म-शुद्धि के दो हैं साधन, सयम और तपस्या सार।
धर्म यही है आत्म-विकासक, होगा इसमे ही उद्धार।।
नही स्वर्ग-सुख मुझे चाहिए, नही प्रतिष्ठा का प्यासा।
मैं कर्मों के बन्धन तोड़ू, यही एक है अभिलाषा।।

४

समताशाली महाव्रती यति, मुनियो के गुण गाऊगा।
चाहे वे हो किसी वेश मे, भेद नही रख पाऊगा।।
पर निन्दा में समय न खोऊ, मुख से सत्य वचन बोलू।
करके पश्चाताप पाप का, आत्म-वसन कों मैं धोलू।।

५

पक्षपात जो नर रखता है, उसका होता अध. प्रपात।
पक्षपात से तत्क्षण पछो, नीचे गिरता है साक्षात्।।
जो है सच्चा वह है मेरा, मेरा हो सच नही कहू।
जो हो सच्चा तत्त्व उसे मैं, निर्भय होकर शीघ्र ग्रहू।।

६

शुद्ध रखू मैं अपने मन को, करू न कलुषित कभी विचार।
वैर-भावना नही रखू मैं, है परिवार सभी ससार।।
क्रोध क्षमा से, मान विनय से, और सरलता से माया।
लोभ-अग्नि को समता-जल से, शान्त करू पा नर-काया।।

७

वाद-विवाद न करू किसी से, गुण का ग्राहक बन जाऊ।
भेद-भाव हो जहा वहा पर, साम्य-भावना सरसाऊं।।
जो उपदेश न माने उस पर, क्रुद्ध नही मैं तो होऊ।
होकर निष्फल तप्त अपर पर, आत्म-शान्ति को क्यो खोऊ।।

८

विद्या-अर्जन करूं वही मैं, जिससे हो अपना उत्थान।
नही कष्ट दू किसी जीव को, समझू सबको आत्म-समान॥
देख दूसरो की वढती को, ईर्ष्या मन मे नही करूं।
हिंसक-जन के हृदय-पटल में, सदा दया के भाव भरू॥

६

किया किसी ने मेरा हित जो, उसे नही मैं भूलूगा।
अहित करे यदि मेरा कोई, मैं न कभी वदला लूगा॥
वनकर लोलुप सरस वस्तु को, मैं न कभी भी खाऊगा।
हास्य, कुतूहल विकथा करके, समय कभी न गवाऊगा॥

१०

चेतन से मैं तन को जानू, सदा भिन्न लक्षणवाला।
तन-विनाश हो जाने पर भी, चेतन कव मिटने वाला॥
पुनर्जन्म फिर हो जाता है, निज-कृत कर्मो के अनुकूल।
समुचित अवसर आया अव तो, नष्ट करू भव-तरु का मूल॥

११

ज्ञान-क्रिया मिल करके दोनो, कार्य-सिद्धि कर पाते हैं।
एक चक्के मे क्या रथ चलता, ज्ञानी स्पष्ट वताते है॥
विना हिलाए हाथ-पैर के, क्या तितीर्षु नर तरता है।
और तैरने का न ज्ञान हो, मनुज डूवकर मरता है॥

१२

मानूं मैं नय वस्तु-अंश का, ग्राहक इतर-अंश-सापेक्ष।
नय दुर्नय बन जाता है जो, रहता इतर-अंश-निरपेक्ष।।
एक एक नय सत्य-अंश है, पूर्ण सत्य नय चय बनता।
एक दृष्टि से हार्द तत्त्व का, कभी न पा सकती जनता।

१३

क्या करना था, और किया क्या, क्या मेरा है कार्य सही
भौतिक सुख में मोहित होकर, मैंने सोचा कभी नहीं
'मुनि गणेश' है एक कार्य ही, भूला मैं जो अपना रूप
प्राप्त करूं मैं उसे यही है, एक भावना विशद स्वरूप

गीतांजलि

चौवीस जिन-वन्दना

वन्दना आनन्ददायक, भक्ति-वश हो मैं करूं।
तीर्थंकर चौवीस जिनवर, चरण-रज सिर पर धरू॥

प्रथम जिनवर ऋषभ प्रभुवर, अजित, सभवनाथ हैं।
आप्त अभिनदन जिनेश्वर, जिन सुमति जग-तात हैं॥
पद्म-प्रभ परमेश त्राता, क्लेश-हर तीर्थेश हैं।
श्री सुपार्श्व जिनेशतारक, चन्द्रप्रभ देवेश हैं॥

सुविधि शीतल शान्तिकारक, तीर्थंकर श्रेयास वर।
वासुपूज्येश्वर जिनेश्वर, विमल विमल प्रकाश-कर॥
प्रभु अनन्त अनन्तज्ञानी, धर्म जिन जग-वन्धु हैं।
शान्ति जिनवर शान्तिकारक, कुन्थु प्रभु गुण-सिन्धु हैं॥

तीर्थंकर अर, मल्लि जिनवर, मुनिप मुनिसुव्रत व्रती।
नमि अमित उपकारकारी, नेमि जिन शासन-पति॥
परम पावन पार्श्व प्रभुवर, वीर वीर महान हैं।
लोक में उद्योतकारी, केवली भगवान हैं॥

अमित दर्शन, ज्ञान, वल वर, चरित-धर तीर्थेश हैं।
स्फटिक सिंहासन गगन मे, तरु अशोक विशेष हैं॥
दिव्य ध्वनि औ' छत्रत्रय वर, सुमन की बरसात है।
भव्य भामण्डल, चमर, सुर-दुदुभी विख्यात है॥

देव द्वादश श्रेष्ठ गुणधर, वचन गुण पंतीस हैं।
सदा चौंसठ इन्द्र-पूजित, स्वातिशय चौतीस हैं॥
सहस्राधिक अष्ट लक्षण, युक्त देव शरीर है।
धर्म-देव उपासना से, निकट भव-जल-तीर है॥

वीर-वन्दना

करे आनन्दित-मना हम, वीर विभुवर! वन्दना।
सिद्धि पाए साधना कर, कर्म-कन्द-निकन्दना॥

शान्ति अद्भुत् है तुम्हारी, और अद्भुत ज्ञान है।
साम्य अद्भुत है तुम्हारा, और अद्भुत ध्यान है॥
अहो! है सिद्धान्त अद्भुत, और अद्भुत साधना।
जागरण अद्भुत तुम्हारा, और तप आराधना॥

आत्मबल अद्भुत तुम्हारा, और अद्भुत न्याय है।
त्याग है अद्भुत तुम्हारा, और मन अकषाय है॥
अभय है अद्भुत तुम्हारा, अहो! तन निरपेक्षता।
अहो! निद्रा-विजय अद्भुत, तत्त्व है सापेक्षता॥

अहो! अद्भुत रूप सपद, वीर्य की परिपूर्णता।
अहो! चित्त-समाधि अद्भुत, घोर कष्ट-सहिष्णुता॥
अहो! अद्भुत है अभिग्रह, और हैं अपरिग्रह।
अहो! अद्भुत है अहिंसा, अनेकान्त अनाग्रह॥

समन्वय की शक्ति अद्भुत, और अद्भुत स्थैर्य है।
ईश! है ऐश्वर्य अद्भुत्, और अद्भुत धैर्य है॥
भुवन-भूषण है तुम्हारी, भक्ति अद्भुत शान्तिदा।
हे प्रभो! सब अद्भुतों की, निधि तुम्हें वन्दन सदा॥

महावीर-सन्देश

सकल जग के वन्धु समता-सिन्धु वीर जिनेश हैं।
आत्म-हितकर, शान्ति-सुखकर, क्लेश-हर सन्देश है॥

रत्न-त्रय की साधना है, मोक्ष की आराधना,
त्याग कर आग्रह, करो सव सत्य की समुपासना।
करो अगीकार अपने से हुई जो भूल है,
मत करो ममता किसी पर, दुख का यह मूल है॥

विश्व के छोटे-वड़े सव जीव आत्म-समान है,
कभी मत मारो किसी को, यह दया सुख-खान है।
है विधाता दुख का सुख का न कोई दूसरा,
करो शासन स्वय निज पर, शान्ति का यह पथ खरा॥

करो सकट सहन समता-भाव से यह धर्म है,
मिलेगा फल स्वत वैसा किया जैसा कर्म है।
करो मत निन्दा किसी की, श्रेय पर गुण-गान है,
आत्म-निन्दा श्रेष्ठ तप है, सत्य ही भगवान है॥

तपश्चर्या से तपस्वी, श्रमण समता-भाव से,
ज्ञान से मुनि और व्राह्मण, व्रह्मचर्य स्वभाव से।
जन्म से होता न ऊंचा, और नीचा भी नही,
कर्म से ही शूद्र होता, कर्म से व्राह्मण वही॥

किसी को करना न पीड़ित, ज्ञान का यह सार है,
क्योंकि जीवन मे दया विन, ज्ञान केवल भार है।
दो अभय का दान सबको, हो अभय प्राणी सभी,
बने अन्तर्मुखी जीवन, सरल हो आत्मा तभी॥

महावीर-दशन

वीर प्रभु की दिव्य वाणी सकल जग क्षेमंकरी।
दुख-उदधि तारण-तरी, यह साम्य-रस से है भरी॥

द्रव्य, नित, उत्पाद, व्यय, स्थिति रूप हैं सम-काल मे,
मत फसो एकान्त नित्य, अनित्यता के जाल मे।
द्रव्व-नय की दृष्टि से है, वस्तु जग मे नित्य भी,
और है पर्याय नय का कथन वस्तु अनित्य भी॥

है नहीं आद्यन्त जग का, सदा स्थायी रूप है,
किन्तु उसकी अवस्थाए, भिन्न-भिन्न स्वरूप है।
द्रव्य जग मे नही घटते और वढते भी नही,
असद् की उत्पत्ति सत् का नाश क्या देखा कही॥

अत: ईश्वर विश्व-कर्त्ता और हर्ता भी नही,
जो अतनु कृत-कृत्य निज में लीन वह कर्ता नही।
है अपेक्षित नही ईश्वर कर्म के फल-दान मे,
मारने की प्रकृति होती स्वत विष के पान में॥

है अनन्तानन्त प्राणी जो कि ईश्वर रूप है,
भिन्न है अस्तित्व सव का चिदानन्द स्वरूप है।
रत्नत्रय की साधना कर मुक्त हो सकते सभी,
और फिर भी अवतार धारण वे न करते हैं कभी॥

कर्म के आगमन में है हाथ आश्रव द्वार का,
और सम्वर धर्म ही है हेतु आत्मोद्धार का।
जाति, लिंग-विशेष, मत है धर्म मे बाधक नही,
सरल आत्मा अप्रमादी है वही साधक सही॥

नौ तत्त्व

ज्ञेय हैं नौ तत्त्व जिनका ज्ञान शिव-सोपान है।
साध्य, साधक और बाधक का विवेक महान है॥

है अनन्तानत जग मे जीव चेतन-रूप है,
है अलग अस्तित्व सबका जो सदा सद्‌रूप है।
है असख्य प्रदेश चिन्मय देह के परिमाण है,
रत्न-त्रय की साधना से निकटतम निर्वाण है॥

है अजीव अमूर्त नभ औ' काल, धर्म, अधर्म है,
मूर्त पुद्‌गल द्रव्य जिसका गलन-पूरण' धर्म है।
गगन, धर्म, अधर्म, पुद्‌गल सप्रदेशी चार है,
अप्रदेशी काल मे तो द्रव्य का उपचार है॥

पुण्य बेड़ी स्वर्ण की है, पाप लोहे की रचित,
शुभ, अशुभ के रूप में ये तत्त्व होते हैं उदित।
जो कि कर्माकर्षकारी जीव के परिणाम है,
तत्त्व आश्रव है यही भव-भ्रमण हेतु प्रकाम है॥

---

१. गलन-पूरण स्निग्ध या रुक्ष कणो की सख्या-हानि का नाम 'गलन' और उनकी सख्या-वृद्धि का नाम 'पूरण' है।

कर्म का अवरोध-कारक तत्त्व संवर श्रेय है,
मोक्ष का है परम साधक इसलिए आदेय है।
प्रथम है सम्यक्त्व संवर विरति-शिव सदुपाय है,
अप्रमाद, अयोग संवर शान्ति-कर अकषाय है॥

अनशनादिक निर्जरा के हेतु बारह ख्यात है,
जीव की जो शुद्धि आंशिक निर्जरा अवदात है।
कर्म-बन्धन बन्ध अनुदित-दशा है यह कर्म की,
सर्व कर्म-विमुक्ति जिससे प्राप्ति है शिव-शर्म की॥

जैन-साधना

साधना मैं करू अपने, साध्य आत्माराम की।
बात साधक के लिए है, एक ही यह काम की॥

देव मैं मानू उन्हे जो वीतराग विशुद्ध हो।
नाम चाहे राम, हरि, हर, वीर, ब्रह्मा, बुद्ध हो॥
नही देते शाप या वर, सदा निज मे लीन है।
साम्यदर्शी, सर्वदर्शी, सर्वदा स्वाधीन है॥

जो अहिंसा के पुजारी, ब्रह्मचारी, सयति।
दीन-जन के बन्धु, समता-सिन्धु पर-हित में रति॥
यथावादी, तथाकारी, उच्चतम आचार है।
हो किसी भी वेश में वे, गुरु हृदय के हार हैं॥

धर्म है वह श्रेष्ठ जिससे, शुद्ध मन, वच, काय हो।
क्रोध आदि कषाय क्षय हो, रत्न-त्रय की आय हो॥
रूप अपना हो अनावृत, वासनाएं क्षीण हो।
नाम चाहे जैन, वैष्णव, बौद्ध कुछ भी क्यो न हो॥

विश्व है परिवार मेरा, अमल मैत्री उदित हो।
दूसरों की यशो-महिमा, श्रवण कर मन मुदित हो॥
हो न कोई दुखी प्राणी, सब सुखी स्वाधीन हो।
मिले जब विपरीत-मति तब साम्य मे मन लीन हो॥

श्रेय आत्मा मे रमण, यह सिद्धि का सोपान है।
क्षणिक भोगो से भ्रमण, यह घोर दु:ख की खान है॥
देह से है भिन्न आत्मा, ज्ञानमय आनन्दमय।
शीघ्र पाऊ रूप अपना, साधकर वर रत्न-त्रय॥

धर्माचरण

धर्म का अन्तःकरण से, आचरण करते रहो।
सत्य, समता, दया, दम की, भावना भरते रहो॥

आत्म-हितकर, शान्ति-सुखकर, परम मगल रूप है।
सकल सकट-हर शिवंकर, धर्म रूप अनूप है॥
विरस, विषयो से विरत है, मताग्रह से दूर है।
त्याग, तप, सन्तोष, समता-भाव से भरपूर है॥

पर-पदार्थों पर नही हो, भावना अपनत्व की।
योग और वियोग में हो, साधना सम-तत्त्व की॥
दूसरो के दुख को निज दुख से है तोलना।
सहज, मित, अनवद्य, हितकर, सत्य वाणी बोलना॥

अभय का दो दान सबको, आत्म-सम सब जीव हो।
नम्रता, सतोष, ऋजुता, ब्रह्मचर्य सजीव हो॥
राग से वेलाग रहकर, करो जीवो का भला।
द्वेष को है दूर करना, शान्त जीवन की कला॥

प्राणियो के साथ मैत्री-भाव का व्यवहार हो।
सज्जनो के सद्गुणो का, हृदय से सत्कार हो॥
मोह जीवन से नही हो, मौत से हो भय नही।
वस्तुत जय आत्म-जय है, पर-विजय है जय नही॥

वचन-पटुता, निरामयता, सरस कविता, भव्यता।
कार्य-क्षमता, मधुर-स्वरता लोक-प्रियता, सभ्यता॥
बुद्धिमत्ता, वीर्यवत्ता, शान्ति अनुपम सम्पदा।
धर्म-तरु से ये अचल-फल, प्राप्त करते नर सदा॥

संतोष

अरे नर! सन्तोष-धन विन, विश्व मे है सुख कहां।
लोभ में आसक्त होकर, क्यों दुखी वनता यहा॥

नाथ सन्तोषी पुरुष है, जगत् उसका दास है।
विश्व की सव सम्पदाएं, सदा उसके पास हैं॥
चरण-रक्षा के लिए हैं, चर्म के जूते जहा।
उस पुरुष के हित धरातल, है न चर्मावृत कहा॥

लाख मिलने पर करोड़ो की न होती चाह क्या?
विना मन-सन्तोष होता शान्त तृष्णा-दाह क्या?
लोभ मे आसक्त प्राणी, भटकता पशु भाति है।
हो नही सन्तोप जव तक, कहा तव तक शान्ति है॥

परम सन्तोपी पुरुप ही, वस्तुत धनवान है।
अधिक तृष्णावान धनपति, भी दरिद्र महान है॥
तत्त्वत सतोष ही है, सुखद स्थायी संपदा।
विश्व का धन धूल है, नर वने सन्तोपी यदा॥

जो रखे सन्तोप अपने लाभ मे वह नर सुखी।
व्यर्थ पर के लाभ को कर चाह क्यो वनता दुखी॥
जो पडे निन्नानवे के फेर मे फिर सुख कहा।
स्पष्ट है द्रष्टान्त लोभी सेठ धनपति का यहा॥

पठन मे, प्रभु - भजन मे, गुण - ग्रहण मे, सद्ध्यान में।
है नही सन्तोष हितकर, साधु - सेवा, दान मे॥
किन्तु धन, भोजन, स्वदारा में सुखद सन्तोष है।
वने जीवन शन्तिमय यह ज्ञानियो का घोष है॥

क्रोध

क्रोध कर क्यो खो रहा है शान्ति अनुपम सम्पदा।
क्यो न समता-शील वनता, लक्ष्य है ऊंचा यदा॥

क्रोध घोर अशान्ति-कारक, धर्म-हारक क्रोध है।
प्रीति-नाशक, नीति-नाशक, धैर्य-नाशक क्रोध है॥
साधना में क्रोध वाधक, क्रोध शत्रु महान है।
क्रोध को जीते विना, तप-जप सभी गज-स्नान है॥

क्रुद्ध मानव वने दानव भूलता निज भान है।
नही रह सकता उसे निज हिताहित का ज्ञान है॥
देखता है दोष पर के गुण नजर आते नही।
सोचता है वुरा पर का चित्त स्थिर रहता नही॥

क्रोध के आवेश मे नर क्लेश कर वनता दुखी।
शान्ति वह पाता नही, तव हो सके कैसे सुखी॥
जहर वनता मिष्ट भोजन, शुद्ध रहता मन नही।
तप्त रहता है निरन्तर, स्वस्थ रहता तन नही॥

क्रोध है दुर्गुण अहित-कर, यो स्वय अनुभव करो।
त्यागना है इसे ऐसा लक्ष्य निर्धारित करो॥
पढो जीवन-चरित समता-शील पुरुषो के सदा।
और चिन्तन करो, आया क्रोध क्यो कैसे कदा॥

दोष अपने देख लो है मौन-व्रत सक्लेश-हर।
तथा सौ तक करो गणना, जाप प्रभु का द्वेष-हर।।
क्रोध के फल है भयकर, सतत यो चिन्तन करो।
सहन-शील मनुष्य बनकर, क्रोध का दूषण हरो।।

मेरी चाह

शुद्ध चिन्मय रूप में हो, सदा तन्मयता विभो !
चाह मेरी है यही, भव-थाह दिखला दो प्रभो !

सत्य का ग्राहक वनू मैं, त्याग अपना आग्रह।
दुर्गुणो से दूर होकर, करू सद्गुण-सग्रह ।।
देह भी मेरी नही है, स्नेह फिर किससे करू।
रमण आत्मा मे निरन्तर, कर अनश्वर सुख वरू ।।

करू दुष्कृत प्रकट दिल से, सुकृत की अनुमोदना।
मैं वनू अन्तर्मुखी, तज, दुरित-दम्भ विडम्वना ।।
कथन, चिन्तन, कार्य—तीनो एक हो यह कामना।
शत्रु के प्रति भी सतत हो, हृदय मे सद्भावना ।।

मिले हेतु विकार के, फिर भी रहू अविकार मैं।
विश्व है परिवार मेरा, कौन अरि ससार मे।
मैं वनू निर्मोह, निर्मल, मोह वन्धन तोड़कर।
सम रहू सुख-दुःख मे, सम-भाव मे मन जोडकर ।।

कौन हू मैं, क्या किया है, कार्य क्या अवशेष है।
कौन सच्चा मित्र मेरा, कौन शत्रु विशेष है ।।
वस्तुत सुख क्या, कहा है, और वह कैसे मिले।
ज्ञान हो अम्लान जिससे आत्म-नन्दन-वन खिले ।।

कृपा - सागर ! कार्य मेरे लिए जो प्रतिकूल है।
करूं न वह पर के लिए यह धर्म - तरु का मूल है॥
हो दमन मन - इन्द्रियों का, शमन काम - विकार का।
आत्म - दर्शन हो यही है, सार नर अवतार का॥

सत्सग

रे मनुज ! सत्सग कर अव मिला मानव अग है।
जीत अन्तर जग कर अरि अन्तरग अनग है॥

है बुराई वुरी उससे भी बुरा सस्कार है।
जो बुराई का वनाता नित नया आकार है॥
पनपते सस्कार वचपन मे वुरे दु सगत।
शीघ्र वच्चो को वचाओ वुरी सगति से अत.॥

कुसगति से कर रहे शिशु नष्ट निज जीवन अमल॥
भार कुल-श्रृंगार वच्चे हो रहे हैं आजकल॥
वने उन्नति-शील शिशुगण सज्जनो के सग से।
हो सुरजित छात्र जीवन सद्गुणों के रग से॥

संग जैसा रग वैसा यही उक्ति निरोग है।
घास वनना दूध, मिलता धेनु का जव योग है॥
पलक भर सत्सग से ही क्या न नर-कल्याण है।
लवण चाहे स्वल्प ही हो, सरसतम पकवान है॥

दूर होते शीघ्र दुर्गुण पनपती ममता-लता।
हिताहित का ज्ञान होता, और सवसे मित्रता॥
वुद्धि की जड़ता न रहती, शुद्धि होती पाप की।
शीघ्र मिटती सुसगति से व्यथाए भव-ताप की॥

वने अन्तर्मुखी जोवन सुखी संतोषी सदय।
शान्तिमय, वैराग्यमय, वर ज्ञानमय, निस्पृह अभय॥
उच्चतम आचार निर्मल भावना वर सम्पदा।
अहो फल सत्सग के ये क्या न पाते नर सदा॥

निन्दा-त्याग

निज प्रशसा की तरह है, हेय पर-निन्दा सदा।
क्यो न करता आत्म-निन्दा, मिले अनुपम सम्पदा॥

दूसरो की करे निन्दा, निन्द्य निन्दक नीच नर।
व्यर्थ ढोता पाप का वह, भार अपने सीस पर॥
हाथ कुछ आता नही औं सव जगह दुत्कार है।
नष्ट कर नर जन्म पाता, नरक दुख अपार है॥

जो करे पर की प्रशंसा, और निज निन्दा सदा।
विश्व मे ऐसे पुरुप दो-चार ही मिलते कदा॥
किन्तु पर-निन्दा स्व-महिमा, एक जिनका काज है।
पुरुष गणनातीत ऐसे हुए, होगे आज है॥

क्रुद्ध मुनि को सत-गण मे, कहा वह चडाल है।
और खर को भी कहा, पशु-समाज मे चडाल है॥
पक्षियो मे काक को भी, कहा यह चंडाल है।
तथा निन्दक को वताते नीतिविद् चडाल है॥

करो अपनी आत्म-निन्दा, श्रेष्ठ-तम तप है सही।
मार दो अभिमान अरि को साधना-वाधक यही॥
आत्म-निन्दा विना होती, क्या कभी आराधना।
और होती है सफल क्या, घोर तप को साधना॥

आत्म-ज्ञान

वीर प्रभु की सार वाणी ने किया उद्धार है।
ज्ञान आत्मा का दिया है, सिद्धि का जो द्वार है।।

है असंख्य प्रदेशमय सब जीव तन परिमाण है।
आदि और न अन्त जिनका रूप एक समान है।।
किन्तु उनकी अवस्थाएं, भिन्न-भिन्न स्वरूप हैं।
है पृथक् अस्तित्व सबका, सभी चेतन रूप है।।

कर्म के मल से मलिन नित, जगत के सब जीव हैं।
चार गतियो मे भटकते, वहा दुःख अतीव है।।
कभी हाथी, कभी चीटी, कभी नर, नारी कभी।
कभी सुर, नारक कभी, भू, आग, जल, तरु भी कभी।।

कर्म के अनुसार सुख-दुख रूप फल मिलता स्वतः।
अन्य कोई है न जग मे, सुखद दुखद नर अतः।।
कर्मयुत है जीव-कर्ता, और फल-भोक्ता यही।
काल आदि निमित्त उनको दोष देना है नही।।

है स्वयं बलवान आत्मा, कर सके क्या दूसरा।
क्या नही अहि-पाश तोडा, क्या पवन-सुत है डरा।।
ज्ञान आत्मिक शक्ति का हो, और हो विश्वास वर।
और हो उद्यम सही तो बने आत्मा ईश वर।।

लूटकर सुख दूसरों को, क्या किया दुखित नही।
रूप सुन्दर देखकर क्या, मन हुआ विचलित नही॥
क्रोध से कम्पित कभी क्या, हुई है काया नही।
मिला है सम्मान जब-क्या, मान तब आया नही॥

परोपकार

करो पर-उपकार मानव-जन्म का यह सार है।
मत करो पर का बुरा यह, घोर पापाचार है॥

मिला मानव जन्म अपने पूर्व पुण्य प्रताप से।
दूसरो का अहित कर, मत करो मैला पाप से॥
बनो पर-उपकारकारी आत्म-हितकारी सदा।
महापुरुषो का यही है, धर्म अनुपम सम्पदा॥

मूढता को दूर करना, दिव्य ज्ञान प्रकाश से।
क्रूरकर्मी को बनाना, धर्म-रत उपदेश से॥
कुपथगामी को बनाना, सुपथगामी सयति।
वस्तुतत उपकार दुर्मति को बनाना सन्मति॥

अन्न, जल, वस्त्रादि देना, जगत् का व्यवहार है।
बन्धु का सहयोग करना, बन्धु का आचार है॥
धर्म में अस्थिर पुरुष को बोध देकर स्थिर करें।
है यही उपकार सच्चा, जन्म-जल-निधि से तरे॥

पिता-माता और गुरु ने जो किया उपकार है।
उसे भूले वह पुरुष तो, कृतघ्नी साकार है॥
उऋण कैसे हो सके जो किया उस उपकार से।
स्पष्ट बतला रहे ज्ञानी शास्त्र के आधार से॥

विना फल की चाह, पर-हित करे वे मानव कहां।
और पर-उपकार कर फिर भूल जाते वे कहां॥
जो करे उपकारकारी का भला वह क्या भला।
अहितकारी शत्रु का भी हित करे वह है भला॥

सत्य की साधना

सत्य की शिव-साधना से दूर होते क्लेश है।
सत्य सधने पर न रहता, साध्य कोई शेष है॥

सत्य की है सार जग में, शुद्धिकारक सत्य है।
सत्य है आधार जग का, सिद्धिदायक सत्य है।
सत्य की जय-विजय होती, सत्य से फलते सभी।
झूठ के तम मे न छिपता सत्य का सूरज कभी॥

सत्य है यह सृष्टि केवल दृष्टि हो जब ज्ञेय की।
और मिथ्या मानती है, दृष्टि समुपादेय की॥
वस्तुत. है प्रेय, मिथ्या, सत्य केवल श्रेय है।
मताग्रह से दूर रहते, सत्य जिनका ध्येय है॥

सत्य होता है सनातन, नष्ट होता है नहीं।
सत्य सबका एक ही है, भिन्न हो सकता नहीं॥
सत्य की जड सदा गहरी, झूठ की जड़ है नहीं।
बिना फूटे पाप का घट कभी रह सकता नहीं॥

विश्व-तल का चक्र चलता सत्य के आधार पर।
धर्म का संसार पलता, सत्य के आधार पर॥
परम मंगल दीप जलता, सत्य के आधार पर।
साधना का वृक्ष फलता, सत्य के आधार पर॥

सत्य पर सब मानवों का, जन्मगत अधिकार है।
सत्य का सबके लिए, रहता अनावृत द्वार है॥
सत्य का हो ज्ञान सम्यक्, अटल दृढ विश्वास हो।
और हो आचरण तब ही, पूर्ण आत्म-प्रकाश हो॥

स्वागत-गान

हुआ है शुभ आगमन शुभ समय में गुरुराज का।
करें स्वागत त्याग से वैराग्य से, गण-ताज का।।

हैं अकिंचन, नही लेते भेंट कचन की कभी।
हैं सभी के सत तुलसी सुने वाणी जन सभी।।
पतित पावन कष्ट सहकर, कर रहे सबका भला।
क्यो न सेवा करे मन मे, मिले जीने की कला।।

है अहिंसा के पुजारी आत्म-सम सब जीव है।
नही देते दुख किसी को, साम्य-भाव सजीव है।।
धर्म का अधिकार सबको, करो तन-मन से सदा।
हो किसी भी जाति का वह, है न कुछ बाधा कदा।।

हो न धार्मिक स्थान में हो धर्म की आराधना।
धर्ममय जीवन बने, हो इस तरह की साधना।।
सकल धर्मों मे समन्वय हो यही है कामना।
हो परस्पर एकता समभावना-सद्‌भावना।।

गुण-प्रधान महान् नेता, निपुण है आचार मे।
कर रहे उद्यम निरन्तर, शान्ति हो संसार मे।।
बने जीवन सुखी सबका अणुव्रत अभियान है।
अहो! मानव मात्र का बन एक ही यह प्राण है।।

मुक्तक संग्रह

१

धर्म निश्छलता विना पल नही सकता,
कर्म निश्छलता विना फल नही सकता।
मन के मन्दिर मे छिपे है भगवान्,
दर्शन निर्मलता विना मिल नही सकता॥

२

दुर्गुणो से आदमी शैतान बन जाता है,
सद्गुणो से आदमी महान बन जाता है।
अनत गुणो के बीज छिपे हैं हर आत्मा में,
अभिव्यक्ति से आदमी भगवान बन जाता है॥

३

अपना दिमाग नही तो शिक्षा से क्या होगा,
घट मे विराग नही तो दीक्षा से क्या होगा।
नकल से उत्तीर्ण होने वाले विद्यार्थियो!
अपना पुरुषार्थ नही तो परीक्षा से क्या होगा॥

४

विषय के दास जैसा कोई दास नही है,
स्नेह के पाश जैसा कोई पाश नही है।
सुन्दर से सुन्दर मकान बनाता है आदमी,
शिव के आवास जैसा कोई आवास नही है।।

५

मानव जबान खोलकर पछताता है,
और पशु बिना बोलकर कष्ट पाता है।
वास्तव मे सही बात तो यह है कि,
सयम बिन सारा ससार दुख उठाता है।।

६

चिंतन में वृद्ध जैसा होश चाहिए,
जीवन में जवान जैसा जोश चाहिए।
सफलता का यह सुंदर सूत्र है,
मन बच्चों के जैसा निर्दोष चाहिए।।

७

आज भाई को भी भाई का विश्वास नहीं है,
सुख से श्वास लेने के लिए अवकाश नहीं है।
फैल रहा है चारों ओर आतंक ही आतक,
वैज्ञानिक युग में अभय का कहीं आभास नही है।।

८

माँ के बिना बच्चा पल नही सकता,
जल के बिना कमल खिल नही सकता।
भले किसी भी संस्थान को देखो तुम,
विश्वास के बिना वह चल नही सकता॥

९

गरीबी को दूर करो नारा लगाया जाता है,
संयम सादगी का पाठ नही पढ़ाया जाता है।
कैसे रहेगा वन हरा भरा जब मूल को छोड़कर,
केवल पत्तों को ही जल पिलाया जाता है॥

१०

तिमिरहारी दीप भी तिमिरधारी हो रहा है,
गर्वहारी ज्ञान भी गर्वकारी हो रहा है।
धर्म के नाम पर हो रहा है दंगा फसाद,
जहरहारी अमृत भी जहरकारी हो रहा है॥

११

धर्म तो वहा है जहा सबके प्रति समभाव है,
धर्म तो वहा है जहा शत्रु के प्रति सद्भाव है।
धर्म की सुरक्षा के लिए आपस मे लड़ने वालो!
धर्म संरक्षकों का क्या होता यही बर्ताव है॥

१२

पैसे के लालच से प्रण तोड देता आदमी,
पैसे के लालच से दल छोड देता आदमी।
न्याय को जानकर भी अनजान-सा बनकर,
पैसे के लालच से मुख मोड लेता आदमी॥

१३

सूर्य की एक किरण तम का प्रणाश कर देती है,
अमृत की एक बूंद विप का विनाश कर देती है।
भव्य भावना मे भावित होकर देखो तो सही,
धर्म का एक पल कर्म का ह्रास कर देती है॥

१४

थोडा-सा भी तेल सारे जल मे पसर जाता है,
नन्हा-सा भी बीज उर्वर धरा मे उभर जाता है।
जरूरत नही है पडित को ज्यादा कुछ कहने की,
जरा-सा भी ईशारा सारा काम कर जाता है॥

१५

मानव-मानव सभी एक जाति के भाई है,
सभी धर्म शास्त्रों ने बात यह बताई है।
विविध विचार व वेप मे उतनी बुराई नहीं,
मन भेद से पड जाती पथ मे खाई है॥

१६

भोजन का लक्ष्य भूख मिटाना है स्वाद नही,
पढने का लक्ष्य ज्ञान बढाना है विवाद नही।
तत्व की गहराई मे उतरकर देखो तो सही,
धर्म का लक्ष्य विवेक जगाना है उन्माद नही॥

१७

सदाचार ही इन्सान की शान है,
सद् विचार ही विद्वान की जान है।
अपने जीवन के निर्माण मे जो सहयोगी बने,
सद् सस्कार ही वास्तव में सच्चा विज्ञान है॥

१८

उज्ज्वल आचार से बनता अच्छा आदमी,
सुन्दर सस्कार से बनता सच्चा आदमी।
बाहरी सत्ता और सम्पदा मिल जाने से कुछ नही,
विशद व्यवहार से बनता ऊंचा आदमी॥

१९

काली कम्बल पर रंग खिल नहीं सकता,
बंजर भूमि में बीज फल नहीं सकता।
अनुशासन मे पलना सीखो विद्यार्थियो,
उच्छृंखलता से ज्ञान कभी मिल नहीं सकता॥

२०

सहनशील बाधाओ को दलकर आगे बढ जाता है,
विनयशील अनुशासन मे ढलकर ऊपर चढ जाता है।
बनाकर अपनी जीवन का स्वर्णिम इतिहास,
स्नेहशील दीप की भाति जलकर आलोक गढ जाता है॥

२१

केवल खाने से नही पचाने से बलवान होता है,
केवल कमाने से,नही बचाने से धनवान होता है।
धर्म ग्रन्थो को पढ़ने-सुनने वाले बहुत हैं यहा पर,
सुनने से नही अमल में लाने से इन्सान होता है॥

२२

दुधारू गाय की लात सहनी पडती है,
कमाऊ पूत की बात सहनी पड़ती है।
सत्य की सुरक्षा के बिना लाग लपेट,
सही-सही न्याय की बात कहनी पडती है॥

२३

पैसे के बल पर बनते कई चुनाव विजेता है,
पैसे के बल पर बनते कई नामी नेता हैं।
पैसे का शासन चलता है सारे ससार मे,
पैसे का बल असभव को सभव कर देता है॥

२४

गिरते हुए भाई को भी भाई नही बचाता है,
उलटा उसको धक्का देकर मन में मोद मनाता है।
आता है तरस आदमी के इस अजीब स्वभाव पर,
दूसरों की कुटिया ढहा कर अपना महल बनाता है ॥

